भाग्य के भरोसे राजा भी नहीं बैठता।

यह लखि निज दुख गद हरण काज,
तुम ही निमित कारण इलाज।
जाने तातैं मैं शरण आय,
उचरो निज दुख जो चिर लहाय ।७।

निज को पर को करता पिछान,
पर में अनिष्टता इष्ट ठान ।८।

आकुलित भयो अज्ञान धारि,
ज्यों मृग मृग-तृष्णा जान वारि।
तन परिणति में आपो चितार,
कबहूँ न अनुभवो स्वपदसार ।९।

तुमको बिन जाने जो कलेश,
पाये सो तुम जानत जिनेश।
पशु नारक नर सुरगति मझार,
भव धर धर मर्यो अनन्त बार ।१०।

अब काल लब्धि बलतें दयाल,
तुम दर्शन पाय भयो खुशाल।
मन शान्त भयो मिट सकल द्वन्द,
चाख्यो स्वातम रस दुख निकन्द ।११।

चन्द्रगुप्त की माता पटना चली गई। वहाँ उसने वीर पुत्र को जन्म दिया और उसका पालन-पोषण किया। राजकुमार चन्द्रगुप्त बड़े पराक्रमी और बुद्धिमान् थे। वह शास्त्र और शस्त्र विद्या में निपुण हो गये। चाणक्य नाम के एक ब्राह्मण ने चन्द्रगुप्त को पढ़ाकर प्रवीण किया।

उसी समय मगध में महापद्मनन्द का राज्य था। जिससे चाणक्य को सन्तोष न था। वह राजा को हटाकर चन्द्रगुप्त को राजगद्दी पर बिठाना चाहता था। उन दिनों भारत पर यूनान के सम्राट सिकन्दर महान् का आक्रमण हो रहा था और उसने उत्तर पश्चिम सीमा प्रान्त एवं पंजाब पर अपना अधिकार जमा लिया था। चन्द्रगुप्त ने यूनानियों की वीरता की प्रशंसा सुनी थी। चाणक्य की सम्मति से वह सिकन्दर महान की सेना में बेधड़क चला आया और उन विदेशियों की सेना में भरती हो गया।

चन्द्रगुप्त को यूनानी सेना में रहते अभी बहुत समय नहीं बीता था कि उसका क्षत्रिय तेज भड़क उठा। भारतीय क्षत्रियों का लहू उसकी नसों में खौल रहा था। वह स्वाभिमान खोकर अपना जीवन मलीन नहीं करना चाहता था। एक दिन बातों ही बातों में

सिकन्दर से उसकी बिगड़ गई। सिकन्दर का साथ छोड़कर वह कहीं चल दिया। अब चन्द्रगुप्त के भाग्य का सितारा चमका, चाणक्य के सहयोग से उसने नंद राजा को हरा दिया। चन्द्रगुप्त मगध का अधपति हो गया और उसने अपना राज्य सारे भारत में फैला दिया राजा नन्द की पुत्री का विवाह चन्द्रगुप्त से हुआ।

चन्द्रगुप्त ने यूनानी राजा सेल्युकस को भी बड़ी वीरता से हराया। सैल्युकस ने अपनी पुत्री चन्द्रगुप्त को विवाह दी तथा काबुल, कन्धार व ईरान के प्रदेश भी भेंट किये। चन्द्रगुप्त ने भारत के बाहर के राजाओं को भी अपने प्रभाव से वश में कर लिया। प्रजा उसके राज्य में राम राज्य के सुख भोगने लगी। धर्म और सत्य की बढ़वारी हुई।

चन्द्रगुप्त जैन धर्म का दृढ़ श्रद्धानी था। सदैव गृहस्थ का धर्म पालता था। उसने पशुओं की रक्षा के लिए भी अस्पताल खुलवाये थे। वह बड़ा दानी तथा जीव-दया प्रचारक था। एकबार चन्द्रगुप्त ने जैन गुरु श्री भद्रबाहु स्वामी का उपदेश सुना। उसे वैराग्य हो गया और अपने पुत्र बिन्दुसार को राज्य देकर वह साधु हो गया।

दक्षिण भारत के अवण बेलगोल-नामक पवित्र

स्थान पर इसके गुरु ने समाधि-मरण किया, उनकी खूब सेवा की, गुरु तो स्वर्ग पधारे। पीछे चन्द्रगुप्त ने भी जन्म भर तप किया और स्वर्ग पाया।

चन्द्रगुप्त ने २२ वर्ष राज्य किया। इसका समय सन् ईस्वी ३२२ पूर्व से २६८ पूर्व तक रहा। चन्द्रगुप्त संसार में आदर्श सम्राट हुआ। उसकी शासन पद्धति अत्यन्त उत्तम थी। उसके पास एक बड़ी भारी सेना थी। देश में हर एक को सुख था। जनता की आर्थिक दशा बड़ी ही अच्छी थी। बाहर विदेशों से भी यात्री आते थे। इसके दरबार में मेगस्थनीज नाम का यूनानी राजदूत रहता था, उसने चन्द्रगुप्त के राज्य का हाल लिखा है। बालको ! तुम भी चन्द्रगुप्त के समान धीरता और वीरता से काम लो। यदि ऐसा करोगे तो सफलता का मुकुट तुम्हारे सिर पर सोहेगा।

प्रश्नावली

१. चन्द्रगुप्त किस वंश में उत्पन्न हुए थे और बताओ इसके वंश का यह नाम किस प्रकार पड़ गया ?
२. चन्द्रगुप्त के गुरु कौन थे और वे क्या चाहते थे ?
३. चन्द्रगुप्त कौन २ सी विद्याओं में निपुण थे और उन्होंने मगध का राज्य किस प्रकार प्राप्त करके अपना विवाह किस के साथ किया था।
४. चन्द्रगुप्त ने अपना राज्य किस प्रकार चलाया और क्यों कर अपनी प्रजा का पालन किया ?

५. चन्द्रगुप्त ने अपना अन्तिम काल किस प्रकार सफल किया।
६. मेगस्थनीज कौन था उसके बारे में तुम क्या जानते हो?

पाठ ३ अष्ट मूल गुण

मूल जड़ को कहते हैं। जैसे जड़ के बिना पेड़ नहीं ठहर सकता, उसी प्रकार कुछ नियम ऐसे होते हैं कि जिनका पालन किये बिना मनुष्य धर्म-मार्ग पर नहीं चल सकता। इसलिए धर्मपालन के सबसे पहले मुख्य नियमों को मूल गुण कहते हैं।

जिन मुख्य नियमों का पहले पालन किये बिना मनुष्य श्रावक नहीं कहला सकता, वे नियम श्रावक के मूल गुण कहलाते हैं। वे मूल गुण आठ होते हैं।

[१] मद्य त्याग, [२] मांस त्याग, [३] मधु त्याग, [४] अहिंसा, [५] सत्य, [६] अचौर्य, [७] ब्रह्मचर्य और (८) परिग्रह-परिमाण।

१. मद्य-त्याग—शराब वगैरह नशीली चीजों के सेवन का त्याग मद्य त्याग है। शराब अनेक पदार्थों के सड़ने से पैदा होती है। सड़ाने से उसमें अनेक कीड़े

पैदा होते और मरते रहते हैं। जीव-हिंसा के बिना शराब किसी प्रकार तैयार नहीं हो सकती। इस लिए शराब पीने से जीव हिंसा का पाप लगता है। शराब पीने से मनुष्य पागल-सा हो जाता है, उसे भले बुरे का ज्ञान नहीं रहता। शराबी के मुख में कुत्ते पेशाब कर जाते हैं। इसी प्रकार शराबी की और भी दुर्गति होती है। इसलिए शराब नहीं पीनी चाहिये तथा भंग, गांजा, अफीम कोकीन, चरस, तम्माखू, बीड़ी, सिगरेट आदि और भी नशीली चीजों का सेवन कदापि नहीं करना चाहिए।

२. मांस त्याग—मांस खाने का त्याग करना मांस त्याग कहलाता है, मांस त्रस जीवों के घात से उत्पन्न होता है। उसमें अनेक जीव पैदा होते और मरते रहते हैं। मांस के छूने मात्र से ही जीव मर जाते हैं। इसलिए जो मांस खाता है, वह बड़ी हिंसा करता है। मांस खाने से बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है। अनेक प्रकार के रोग हो जाते हैं। मांस खाने वालों के परिणाम क्रूर हो जाते हैं। मांस खाने से शरीर पुष्ट नहीं होता, इसलिए भी सभी स्त्री पुरुषों को मांस छोड़ना ही उचित है।

३. मधु-त्याग—शहद खाने का त्याग मधु त्याग है। शहद मक्खियों का उगाल [वमन] होता है।

मधु में हर समय सूक्ष्म-त्रस जीवों की उत्पत्ति होती रहती है। मधु मक्खियों के छत्ते को निचोड़ कर निकाला जाता है। छत्ते में छोटी मक्खियाँ रहती हैं। छत्ते को निचोड़ते समय वे सब मर जाती हैं। और शहद में उन सबका निचोड़ आ जाता है। इसलिए ऐसी अपरिमित हिंसा की खान, घृणा करने वाली चीज का त्याग करना ही उचित है।

४ अहिंसा अणुव्रत—जान बूझ कर इरादा करके जन्तुओं की हत्या करने से बचना अहिंसा अणुव्रत है। किसी भी मानव को धर्म के नाम से पशुओं की बलि न करनी चाहिए। न शिकार के लिए मारना चाहिए। न ऐसा शौक अपनावें, रेशम व हिंसाकारी वस्तुओं के व्यवहार का त्याग करना चाहिए, जिससे जन्तुओं का अधिक घात न हो। खेती, व्यापार, शिल्प, राज्य प्रबन्ध सम्बन्धी हिंसा गृहस्थों से छूट नहीं सकती। इसे आरम्भी हिंसा कहते हैं जीव दया के लिए पानी छानकर पीना चाहिए। दोहरे मोटे साफ कपड़े से छान कर पीना चाहिये। बिना छाना पानी पीने से बहुत त्रस जीवों की हिंसा होती है। जीव दया के लिए रात्रि में भोजन न करने का जो जहाँ तक हो सके अभ्यास करना चाहिए। रात्रि को मच्छर अधिक उड़ते हैं।

सूर्य के प्रकाश में भोजन करने से भोजन पाचक भी होता है।

५. सत्य अणुव्रत—पीड़ाकारी वचन कभी नहीं कहने चाहिएं, झूठ बोलने से दूसरों को कष्ट पहुँचता है। झूठ बोलकर अपना मतलब निकालना तथा धनादि कमाना पाप है। असत्य हिंसा का ही अंग है।

६. अचौर्य अणुव्रत—बिना दी हुई वस्तु राग वश उठा लेना चोरी है। मनुष्य को सत्य व्यवहार करना चाहिए। चोरी करने से दूसरे के प्राणों को कष्ट पहुँचता है। वह भी हिंसा का भेद है।

७. ब्रह्मचर्य अणुव्रत—ब्रह्मचर्य बड़ा गुण है जब तक विवाह न हो पूर्ण ब्रह्मचर्य पालना उचित है। विवाह होने पर अपनी स्त्री से सन्तोष रखना उचित है। पर स्त्री का त्याग होना चाहिए।

८. परिग्रह परिमाण व्रत—गृहस्थ को जितनी इच्छा व जरूरत हो उतनी सम्पत्ति का परिमाण कर लेना चाहिए। जब उतना धन हो जावे तब सन्तोष से अपना जीवन धर्म, ध्यान व परोपकार में बिताना चाहिए।

नोट—किन्हीं आचार्यों ने मद्य, मांस, मधु और पांच उदम्बर के त्याग को ही अष्टमूल गुण कहा है।

पांच उदम्बर यह हैं —१. बड़फल, २. पीपलफल, ३. पाकर पिलखन ४. गूलर ५. कठूमर अंजीर इनमें त्रस जीव पाये जाते हैं। इनमें से कभी किसी फल में साफ दिखाई नहीं पड़ते हैं, तो भी उसके पैदा होने की सामग्री है। इसका कारण जीव दया के लिए उनका त्याग उचित है।

मद्य, मांस, मधु इन तीनों को मकार कहते हैं, क्योंकि इन तीनों का पहला अक्षर 'म' है।

प्रश्नावली

१. मूल गुण किसे कहते हैं? और इनका पालन कौन करता है? यह भी बताओ कि इन गुणों का नाम 'मूल गुण' क्यों पड़ा?
२. मूलगुण कितने होते हैं? नाम बताओ?
३. मद्य, मांस व मधु सेवन में क्या बुराई है? अहिंसाणुव्रत का धारी इन वस्तुओं का सेवन करेगा या नहीं?
४. अहिंसाणुव्रत से क्या अभिप्राय है? खेती व्यापार आदि करने में हिंसा होती है या नहीं? तुम्हारी समझ में खेती व्यापार करने वाला गृहस्थ अहिंसाणुव्रत धर सकता है या नहीं?
५. क्या मूलगुणों का वर्णन एक समान पाया जाता है? यदि न-पाया है तो इसका क्या कारण है?

पाठ ४ अभक्ष्य

१. जिन पदार्थों के खाने से त्रस जीवों का घात होता है जैसे—बड़, पीपल आदि पांच उदम्बर फल। मिस "कमल डंडो, बीधा अन्न, गले सड़े फल जिनमें त्रस जीव पैदा हो जावें तथा मांस, मधु, द्विदल रस चलित रस।

नोट—द्विदल कच्चे दूध, कच्चे दही और कच्चे दूध की जमी हुई वस्तुएं, उड़द, मूंग, चना आदि द्विदल वस्तु जिसके दो टुकड़े बराबर २ हो जाते हैं को मिलाकर खाना।

चलित—वह पदार्थ जिनका स्वाद बिगड़ गया हो, जो मर्यादा से रहित हो गए हों जैसे बदबूदार घी सुरसली वाला आटा तथा बहुत दिनों की बनी हुई मिठाई, मुरब्बा, अचार आदि।

२. जिन पदार्थों को खाने से अनन्त स्थावर जीवों का घात होता हो जैसे—आलू, अरबी, मूली, गाजर, लहसन, पयाज, शकरकन्द, कचालू, तुच्छ फल [जिसमें बीज न पड़े हों व जो बहुत छोटे हों और बड़े हो सकते हों।]

३. जो पदार्थ प्रमाद तथा काम विकार के बढ़ाने वाले हों जैसे—शराब, कोकीन, चरस, तम्बाकू आदि नशीली चीजें, माजून आदि।

४. अनिष्ट—पदार्थ अर्थात् ऐसे पदार्थ जो खाने योग्य तो हों, परन्तु शरीर को हानि पहुँचावें, जैसे खाँसी दमा रोग वाले को मिठाई खाना, बुखार वाले को घी खाना, अथवा कच्चा देर से पचने वाला अपनी प्रकृति विरुद्ध भोजन करना।

५. अनुपसेव्य—पदार्थ जिसको अपने देश, समाज तथा धर्म वाले बुरा समझें।

इसके सिवाय मक्खन, चमड़े के कुप्पे व तराजू आदि में रखे हुए तथा छुवे हुए घी, हींग, सिरका आदि पदार्थ भी अभक्ष हैं।

प्रश्नावली

१. अभक्ष्य से तुम क्या समझते हो ? और यह कितने प्रकार का होता है ? बताओ।
२. द्विदल किसे कहते हैं ? दही में डाले हुए उड़द के बड़े द्विदल हैं या नहीं ?
३. अनिष्ट हम किसे कहते हैं ? बहुत दिनों की बनी मिठाई, पुराना अचार और एक महीने का पिसा हुआ आटा अनिष्ट है या नहीं और क्यों ?

पाठ ६ कर्म

प्यारे बालको ! तुम नित्य प्रति संसार में देखते हो, कोई सवेरे से शाम तक कठिन परिश्रम करता है, फिर भी उसे सफलता प्राप्त नहीं होती । कोई थोड़े ही परिश्रम से अपने कार्य में सफलता प्राप्त कर लेता है । कोई-कोई थोड़े परिश्रम करने से विद्या सम्पादन कर लेते हैं और कोई-कोई घोर परिश्रम करने पर भी मूर्ख बने रहते हैं । कितने ही लोग धन उपार्जन के लिए दिन रात नहीं गिनते, फिर भी दरिद्रता उनका पीछा नहीं छोड़ती । स्वामी और सेवक में से सेवक ही अधिक परिश्रम करता है और यही निर्धन होता है, ऐसी-ऐसी बातों पर विचार करने से विदित होता है कि जहां छोटे से छोटे और बड़े से बड़े कार्य में सफलता प्राप्त करने के लिये परिश्रम की आवश्यकता है, वहां साथ ही किसी और शक्ति विशेष की भी आवश्यकता है । वह शक्ति कर्म है, जिसे लोग भाग्य कहा करते हैं । जब कर्म परिश्रम के अनुकूल होता है, तभी कार्य में सफलता प्राप्त होती है । देखो दो छात्र साथ पढ़ते हैं, समान परिश्रम करते हैं उनमें से एक परीक्षा के समय बीमार हो जाता है, परीक्षा देने नहीं

पाता। दूसरा परीक्षा देकर पास हो जाता है यह सब कर्म का महात्म्य है। पहले विद्यार्थी ने क्या कुछ कम परिश्रम किया था।

यह भी ध्यान रहे कि यदि अकेले 'कर्म' के भरोसे निठल्ले बैठे रहोगे और हाथ पैर न हिलाओगे तो सफलता नहीं मिलेगी। सफलता तो प्रयत्न से मिलती है किन्तु उसके लिए कर्म की अनुकूलता होनी चाहिए। कर्म-कर्म कहते सभी हैं, परन्तु कर्म के मर्म को कोई नहीं जानते। आओ तुम्हें संक्षेप में इस पाठ में कर्म का कुछ रहस्य समझावें।

कर्म—उन पुद्गल परमाणुओं को कहते हैं जो आत्मा का असली स्वभाव नहीं प्रकट होने देते। जैसे बादल सूर्य के सामने आकर उसके प्रकाश को ढक देते हैं उसी प्रकार बहुत से पुद्गल परमाणु, छोटे २ टुकड़े जो इस लोक में सब जगह भरे हुए हैं, आत्मा में क्रोधादि कषायों के पैदा होने से खिंच कर आत्मा के प्रदेशों में मिलकर आत्मा के स्वभाव को ढक देते हैं। कषायों के सम्बन्ध से उन पुद्गल परमाणुओं में दुख देने की शक्ति भी हो जाती है। इन्हीं पुद्गल परमाणुओं को कर्म कहते हैं।

कर्म आठ हैं १. ज्ञानावरण, २. दर्शनावरण,

३. वेदनीय, ४. मोहनीय, ५. आयु, ६. नाम, ७. गोत्र और ८. अन्तराय।

१. ज्ञानावरण—कर्म उसे कहते हैं जो आत्मा के ज्ञान गुण को प्रकट न होने दे। जैसे प्रतिमा पर पर्दा डाल दिया जावे, तो वह प्रतिमा को ढके रहता है, उसे प्रकट नहीं होने देता। इसी प्रकार ज्ञानवरणी कर्म आत्मा के ज्ञान गुण को ढके रहता है, प्रकट नहीं होने देता। जैसे मोहन अपना पाठ खूब परिश्रम से याद करता है, परन्तु उसे याद नहीं होता, इससे मोहन के ज्ञानावरण कर्म का उदय समझना चाहिये। ईर्षा से सच्चे उपदेश की प्रशंसा न करना, अपने ज्ञान को छुपाना अर्थात् दूसरों के पूछने पर न बताना। दूसरों को इस भाव से कि पढ़कर मेरे बराबर हो जायेगा नहीं पढ़ाना। दूसरों के पढ़ने में विघ्न डालना, उसकी पुस्तकें छुपा देना, बिगाड़ देना, दूसरों को सत्य उपदेश देने तथा सुनने से रोकना, सच्चे उपदेशक को दोष लगाना, गुरु और विद्वानों की निन्दा करना, पढ़ने में आलस्य करना इत्यादि कार्यों से ज्ञानावरण कर्म बंधता है। जितना जितना ज्ञानावरण कर्म हटता जाता है—ज्ञान चमकता जाता है।

२. दर्शनावरण कर्म—उसे कहते हैं जो आत्मा के

दर्शन गुण को प्रकट न होने दे जैसे एक राजा का दरबान पहरे पर बैठा हुआ है वह किसी को भी अन्दर जाकर राजा के दर्शन नहीं करने देता, सबको बाहर से ही रोक देता है। जैसे सोहन 'मन्दिर में दर्शन करने के लिये गया परन्तु मन्दिर का ताला लगा पाया। इससे समझना चाहिए कि सोहन के दर्शनावरण कर्म का उदय है।

३ वेदनीय कर्म उसे कहते हैं जो आत्मा के लिए सुख-दुःख की सामग्री का सम्बन्ध मिलावे। इस कर्म के उदय से संसारी जीवों को ऐसी चीजों का मिलाप होता है जिनके कारण वह सुख महसूस करते हैं। जैसे शहद लपेटी तलवार की धार चाटने से सुख दुःख दोनों ही होते हैं अर्थात् शहद मीठा लगता है इससे तो सुख होता है, परन्तु तलवार की धार से जीभ कट जाती है इससे दुःख होता है। जैसे प्रकाशचंद ने लड्डू खाया अच्छा लगा और पैर में कांटा गड़ गया दुःख हुआ। दोनों ही हालत में वेदनीय कर्म का उदय समझना चाहिये।

वेदनीय कर्म के दो भेद हैं—१. सातावेदनीय, २. असाता वेदनीय।

सातावेदनीय कर्म—उसे कहते हैं जिसके उदय से सुख देने वाली वस्तुएँ मिलें।

असाता वेदनीय कर्म—उसे कहते हैं जिसके उदय से दुःख देने वाली वस्तुएं मिलें।

सब जीवों पर दया करना, चार प्रकार का दान देना, पूजन करना, व्रत पालन करना, क्षमा धारण करना, लोभ नहीं करना, सन्तोष धारण करना, समता भाव से दुःख सह लेना इत्यादि कार्यों से सातावेदनीय 'सुख देने वाला कर्म' का वन्ध होता है।

अपने आपको या दूसरे को दुःख देना, शोक में डालना, पछतावा करना-कराना, पीटना, रोना-रुलाना तथा रो-रो कर ऐसा विलाप करना कि सुनने वाले का दिल धड़क उठे। इस प्रकार के कार्यों से असाता वेदनीय कर्म का वन्ध होता है।

४ मोहनीय कर्म- जिसके उदय से यह आत्मा अपने आपको भूल जावे और अपने से जुदी चीजों में लुभा जावे। जैसे शराब पीने वाला शराब पीकर अपने आपको भूल जाता है उसे भले बुरे का ज्ञान नहीं रहता और न भाई, बहन, स्त्री, पुत्रादि को पहचान सकता है। इसी प्रकार मोहनीय कर्म इस जीव को भुला देता है।

जैसे कोई शीतला पीपल आदि को देव मानता है तथा क्रोध में आकर किसी दूसरे के प्राणों का हरण

करता है या लोभ के वश होकर दूसरे को लुटाता है तो समझना चाहिए कि मोहनीय कर्म का उदय हुआ है।

मोहनीय कर्म सब कर्मों का राजा कहलाता है। इसलिए इसी पर विजय प्राप्त करने का उद्यम करना चाहिए।

५. आयु कर्म उसे कहते हैं जो आत्मा को नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देव शरीर में से किसी एक में रोके रखे जैसे एक मनुष्य का पैर काठ 'शिकंजे में' फंसा हुआ है, अब वह काठ उस मनुष्य को उस स्थान पर रोके हुए है। जब तक उसका पैर उस काठ में जकड़ा रहेगा तब तक वह मनुष्य दूसरी जगह नहीं जा सकता। इसी प्रकार आयु कर्म इस जीव को मनुष्य तिर्यंच आदि के शरीर में रोके हुए है। जब तक आयु कर्म रहेगा तब तक वह जीव उसी शरीर में रहेगा। हमारा जीव मनुष्य शरीर में रहा हुआ है। इसमें समझना चाहिए कि हमारे मनुष्य आयु कर्म का उदय है।

बहुत आरम्भ करने से, बहुत परिग्रह रखने से तथा घोर हिंसा करने से नरक आयु का बन्ध होता है, अर्थात ऐसा करने से जीव नरक में जाता है।

छल, कपट, दगा, फरेब करने से जीव के तिर्यंच आयु का बन्ध होता है अर्थात् ऐसा करने से यह जीव ति[illegible]च होता है।

थोड़ा आरम्भ करने से, थोड़ा परिग्रह रखने से, कोमल परिणाम रखने से, परोपकार करने से, दया पालने से मनुष्य आयु का बन्ध होता है। अर्थात् ऐसा करने से यह जीव मनुष्य पैदा होता है।

व्रत-उपवास आदि करने से, शान्तिपूर्वक भूख-प्यास गर्मी-सर्दी आदि के सहने से, सत्य धर्म का प्रचार करने से सत्य धर्म की प्रभावना करने इत्यादिक और शुभ कारणों से यह जीव देव होता है।

६. नाम कर्म—उसे कहते हैं जिसके उदय से इस जीव के अच्छे या बुरे शरीर और उसके अंगोपांग की रचना हो। जैसे कोई चित्र कार 'तस्वीर बनाने वाला' अनेक प्रकार के चित्र बनाता है, कोई मनुष्य का कोई स्त्री का, कोई घोड़े का, कोई हाथी का।

किसी का हाथ लम्बा, किसी का छोटा कोई कुबड़ा कोई बौना, कोई रूपवान, कोई भद्दा। इस प्रकार नाम कर्म भी इसी जीव को कभी सुन्दर, कभी चपटी नाक वाला, कभी लम्बे दांत वाला, कभी कुबड़ा, कभी

सदैव हानि वह करता है जिसे तुम्हारा भेद मालूम हो। २१
काला कभी सुरीली आवाज वाला, कभी मीठी आवाज
वाला अनेक रूप परिणमाता है। हमारा शरीर, नाक,
कान, आंख हाथ, पांव आदि सब अंगोपाग नाम कर्म
के उदय से ही बने हुए हैं।

इस कर्म के दो भेद हैं अशुभनाम और शुभ नाम
कर्म। कुटिलता से, घमण्ड करने से, आपस मे लडाई,
झगडा कलह करने से झूठे देवो को पूजने से, किसी की
चुगली करने से दूसरों का बुरा सोचने से तथा दूसरों
की नकल करने से, अनेक शुभ कार्यों से अशुभ नाम
कर्म का बन्ध होता है।

सरलता से, आपस मे प्रेम रखने से, धर्मात्मा
गुणीजनों को देखकर खुश होने से, दूसरों का भला
चाहने इत्यादि और शुभ कारणों से शुभ नाम कर्म
का बन्ध होता है।

७. गोत्र कर्म—उसे कहते हैं जो इस जीव को
ऊँच कुल या नीच कुल मे पैदा करे—जैसे कुम्हार
छोटे बडे सब प्रकार के बर्तन बनाता है, उसी प्रकार
गोत्र कर्म इस जीव को उच्च या नीच बना देता है।
उच्च गोत्र कर्म के उदय से यह जीव अच्छे पवित्र
वाले लोकमान्य कुल मे जन्म लेता है और नीच गोत्र
कर्म के उदय से यह जीव छोटे-छोटे आचरण वाले

लोकनिंद्य कुल में पैदा होता है । जहाँ हिंसा, झूठ, चोरी आदि पाप कर्म करता है।

दूसरों को निन्दा करने से, अपनी प्रशंसा करने से दूसरों के होते हुए भो गुणों के छिपाने से और अपने न होते हुए भी गुणों को प्रकट करने से तथा वेद-शास्त्र गुरु का अविनय करने से, अपने जाति, कुल, विद्या, बल रूप आदि का मान करनें से, नीच गोत्र कर्म का बन्ध होता है।

अपनी निंदा दूसरों को प्रशंसा करने से, अभिमान न करने से, विनयवान् होने से, उच्च गोत्र का बन्ध होता है।

८. अन्तराय कर्म उसे कहते हैं जिसके उदय से किसी जीव के कार्य में विघ्न पड़ जावे । जैसे किसी राजा साहिब ने किसी याचक को कुछ रुपये देने का हुक्म दिया, परन्तु खजांची ने कुछ बीच में गड़बड़ अथवा कोई बहाना करके वह रुपया नहीं दिया अर्थात् उस याचक को रुपया मिलने में खजांची साहब विघ्न रूप हो गए। ठीक इसी प्रकार अन्तराय कर्म इस जीव के दान, लाभ, भोग, जो वस्तु एक बार काम में आवे जैसे आहार, पानी, उपभोग जो वस्तु एक बार काम में आकर फिर भी काम में आवे जैसे वस्त्र, मकान

यदि कोई बिगड़ता है तो उसे सुधारने का प्रयत्न करें।

सवारी आदि और बल इन पांचों के होने में विघ्न डालता है।

जैसे किसी ने दान देने के लिये १००० रु० का नोट उठा कर रखा, कोई उसे चुरा कर ले गया या जैसे कोई रोटी खाने लगा तो अचानक बन्दर आकर हाथ से रोटी छीन ले गया ऐसी हालत में अन्तराय कर्म का उदय समझना चाहिए।

किसी को लाभ होता हो न होने देना बालकों को विद्या न पढ़ाना। अपने आधीन नौकरों को धर्म सेवन न करने देना दान देते हुए को रोकना दूसरों की भोग उपभोग की सामग्री बिगाड़ देना ऐसे कार्यों के करने से जीव के अन्तराय कर्म का बन्ध होता है।

प्रश्नावली

१. दुनिया में ऐसी कौन सी शक्ति है जिसके सामने किया हुआ परिश्रम भी व्यर्थ हो जाता है?
२. 'परिश्रम' व 'कर्म' इन दोनों में तुम क्या समझते हो? क्या भाग्य (कर्म) के भरोसे बैठे रहने से हमारे इच्छित कार्य पूर्ण हो सकते हैं यदि नहीं तो क्यों?
३. कर्म किसे कहते हैं? और वे कितने होते हैं? नाम बताओ।
४. असाता वेदनीय, चारित्र मोहनीय, शुभ नाम कर्म और उच्च गोत्र किन किन कारणों से बंधते हैं?
५. सबसे बड़ा कर्म कौनसा है? ज्ञानावरणी, दर्शनावरणी कर्म का क्या कार्य है?

६. बताओ तुम्हें मनुष्य शरीर में रोकने वाला कौनसा कर्म है ? कौन कौन से कार्य करने से तुम्हें मनुष्यगति मिलती है ?

७. अन्तराय कर्म किसे कहते हैं ? एक लड़की के माता पिता ने जबरदस्ती अपनी लड़की को पाठशाला से उठा लिया तो बताओ उसके माता पिता को कौन सा कर्मबन्ध हुआ ?

८. बताओ नीचे लिखों को किन-किन कर्मो का उदय है ।

(क) श्याम ने वर्ष भर तक खूब कठिन परिश्रम किया परन्तु परीक्षा में उत्तीर्ण नहीं हुआ ।

(ख) मोहन नित्य प्रति दिन दुखी जीवों को करुणा बुद्धि से रोटी वस्त्र आदि का दान देता है, परन्तु लोग फिर भी उसकी निन्दा करते हैं ?

(ग) यद्यपि राम के यहाँ नित्य प्रति अच्छे-अच्छे स्वादिष्ट फल खाने को आते हैं पर डाक्टर ने उसे खाने से मना किया हुआ है ।

(घ) मोहन बड़ा आलसी है, तमाम दिन सोता ही रहता है।

(ङ) गोविन्द बड़ा मालदार है, हम कई बार उससे औषधालय तथा कन्या पाठशाला के लिए चन्दा माँगने गये, परन्तु वह इतना कजूस है कि उसके हाथ से एक पैसा भी नहीं छूटा ।

(च) मोहन की आँखों में ऐसा दर्द हुआ कि अन्त में विचारा अन्धा ही हो गया ।

९. समझाकर बताओ कि नीचे लिखों को किन-किन कर्म का बन्ध हुआ :—

(क) लड़के के फेल हो जाने पर श्याम ने अध्यापकों को बड़ी गालियाँ दीं और पाठशाला को ताला लगवा कर छोड़ा ।

(ख) पाठशाला में आते हुए कुछ छात्रों को एक [illegible]

बड़ी गालियां दीं। उनकी पुस्तक फाड़ी, किसी की आँख फोड़ दी, किसी की टाँग तोड़ दी।

(ग) राम कैसे धर्मात्मा आदमी हैं, नित्य प्रति मन्दिर में शास्त्र पढ़ते हैं, कुछ वेतन नहीं लेते, पर फिर भी लोग मंदिर से बाहर निकलते ही उनकी निन्दा किया करते हैं और बुरे से बुरा लांछन लगाने को तत्पर रहते हैं।

(घ) मोहन बड़ा मानी है। आज स्वामी जी महाराज और हम एक छात्र की सहायता के लिए गये, बात तक न सुनी, देहली से चल टाल दिया और झट से हमें बाहर खड़ा कर घर में घुस गया।

(ङ) सुभद्रा सवेरे सात बजे से आठ बजे तक मंदिर में बैठी रहती है, जो कोई लड़की या स्त्री आती है, किसी को सामायिक पाठ व भक्तामर सुनाती है किसी को धर्म की कथा सुनाती है और किसी से भी पैसा तक नहीं लेती।

(च) क्या कहते हैं राम के। बड़ा उद्दण्ड है। मंदिर में आता कभी भी चुपके नहीं रहता। किसी की निन्दा तो किसी को गाली। बड़ा मानी। जो मिल जाय उसी को धमकाना। किसी की पूजा में विघ्न डालना, तो किसी को स्वाध्याय न करने देना। निराले ही ढंग का आदमी है।

पाठ ७ भजन (रे मन !)

[१]

रे मन ! भज-भज दीनदयाल,
जाको नाम लेत इक छिन में ।
कटे कोटि अघ जाल,
रे मन ! भज-भज दीनदयाल ॥

(२)

परम ब्रह्म परमेश्वर स्वामी,
देखे होत निहाल ।
सुमिरत करत परम सुख पावत,
सेवत भाजे काल ।
रे मन ! भज-भज दीनदयाल ॥

[३]

इन्द्र फनीन्द्र चक्रधर गावें,
जाको नाम रसाल ।
जाको नाम ज्ञान प्रकाशै,
नाशै मिथ्या जाल ।
रे मन ! भज-भज दीनदयाल ॥

जो घट देखा आपना, मुझ सा बुरा न कोय। ११

[४]

जाके नाम समान नहीं कुछ
    ऊरध मध्य पताल।
सोई नाम जपो नित 'द्यानत'
    छांड़ि विषय विकराल।
रे मन! भज-भज दीनदयाल॥

प्रश्नावली

१. दीनदयाल से तुम क्या समझते हो? और हमारा दीनदयाल कौन है?
२. परमात्मा का नाम जपने से क्या लाभ है?
३. बताओ इस भजन के बनाने वाले कौन हैं?
४. इस भजन का छन्द कण्ठस्थ सुनाओ?
५. इस पद को पढ़कर सुनाओ और इसका अर्थ भी समझाओ?

पाठ ८ जम्बूकुमार

तीर्थंकर महावीर स्वामी के समय की बात है। मगध देश में राजा श्रेणिक राज्य करता था। उस समय के राजाओं में श्रेणिक बहुत प्रसिद्ध और पराक्रमी राजा था। राजगृही उसकी राजधानी थी। वहीं पर उसका राज्य सेठ रहता था। उसका नाम जिनदत्त था। जम्बूकुमार इसी सेठ का पुत्र था।

जम्बूकुमार ने जब होश सम्भाला तो उसे ऋषिगिरि जैन आश्रम में पढ़ने के लिए भेज दिया गया। जहां जम्बूकुमार ने एक ब्रह्मचारी का जीवन बिताया था और अपने गुरुओं की आज्ञानुसार शास्त्र, विज्ञान, कला कौशल और अस्त्र-शस्त्र की शिक्षा पाई थी। इसी प्रकार तपोधन गुरुओं की संगति में रहते हुए युवावस्था तक पहुँचते २ जम्बूकुमार शस्त्र-शास्त्र में निपुण हो गया। गुरुजन ने उसको अपने आश्रम से विदा किया। वह विनय-पूर्वक गुरुजन का आशीर्वाद लेकर घर आया। माता-पिता अपने पुत्र को सब विद्याओं में निपुण देखकर फूले न समाये।

तपोवन में रहने से जम्बूकुमार का स्वभाव बड़ा दयालु और सत्यनिष्ट हो गया था, उसके मन को दुनियादारी की थोथी बातें नहीं रिझा पाती थीं। सत्य

और न्याय के लिए वह अपना सब कुछ देने के लिए तैयार रहता था। इन गुणों के साथ-साथ जम्बूकुमार देखने में बड़ा सुन्दर और रूपवान था। उसके रूप और गुणों की चर्चा सारी राजगृही में होती थी।

राज्य सेठ ने देखा कि उसका पुत्र विवाह के योग्य हो गया है, उसको उसका विवाह करने की चिन्ता हुई। चार सेठों की पुत्रियों के साथ जम्बूकुमार का सम्बन्ध निश्चय किया गया।

राजा श्रेणिक को खबर मिली कि रत्नचूल नामक विद्याधर राजा के विरुद्ध हो गया है उस शत्रु को वश में करने की चिन्ता हुई। एक दिन सभा में राजा श्रेणिक ने कहा कि 'कौन योद्धा ऐसा है जो शत्रु को वश में कर सके।' सभा में सेठ कुमार जम्बूकुमार भी बैठा था। वह झट से उठ कर खड़ा हो गया और कहा मैं वश में कर के आऊँगा।' राजा ने आज्ञा दे दी। मंत्रियों की राय से राजा श्रेणिक ने जम्बूकुमार को सेना लेकर रत्नचूल को वश में करने के लिए भेजा।

जम्बूकुमार ने अपने रणकौशल से उस राजा को जीत लिया। वैश्यपुत्र होते हुए भी उस वीर ने उस क्षत्रिय की वीरता को परास्त कर दिया। राजा

श्रेणिक जम्बूकुमार की इस विजय पर बड़े प्रसन्न हुए और कुमार का बड़ा सम्मान किया।

जब जम्बूकुमार विजय का डंका बजाते हुए राज-गृही में प्रवेश कर रहे थे, तब नगर के बाहर वन में श्री सुधर्माचार्य का उपदेश हो रहा था। जम्बुकुमार भी सुनने बैठ गए। उपदेश सुनकर कुमार को संसार से वैराग्य हो गया। कुमार ने यह ठान ली कि घर जाकर हम अब विवाह नहीं करेंगे और कल ही आकर साधु हो जायेंगे, आत्म कल्याण करेंगे।

इधर माता-पिता जम्बूकुमार की वीरता के समा-चार सुनकर बहुत प्रसन्न हुए। पुत्र ने अवसर पाकर पिता को अपने दीक्षा लेने का विचार कह दिया और विवाह करने से इन्कार कर दिया। यह खबर जब उन लड़कियों को पहुँची, जिनके साथ जम्बूकुमार का सम्बन्ध हुआ था, तो उन्होंने यह प्रतिज्ञा की 'हम तो जम्बूकुमार को छोड़कर और किसी के साथ विवाह नहीं करेंगी।' लड़कियों की ऐसी हठ होने पर माता-पिता के अति आग्रहवश वे चारों बहुएं रात्रि को जम्बूकुमार को अपनी रसीली-रसीली बातों से मोहित करने लगीं। कुमार वैराग्य भरी बातों से ऐसा उत्तर देते थे कि वे मन में अपनी हार मान जाती थीं।

सवेरा होते ही जम्बूकुमार अपने दृढ़-सकल्प वश घर से चल पड़े। पीछे-पीछे माता पिता, चारों स्त्रियां व एक विद्युतचर चोर जो चोरी करने आया था और कुमार और उनकी स्त्रियों की सब वार्तालाप सुन रहा था, चल पड़े। कुमार ने सुधर्माचार्य के पास केशलोंच कर साधुव्रत ग्रहण किया। माता-पिता चारों स्त्रियों ने व विद्युतचर चोर ने भी दीक्षा धारण की। अब जम्बूकुमार दिल लगाकर आत्म ध्यान करने लगे और शीघ्र ही केवल ज्ञान को प्राप्त किया। ६२ वर्ष के पीछे श्री जम्बूकुमार ने मुक्ति प्राप्त की। केवल ज्ञान के पीछे जम्बूकुमार ने वर्षों तक संसार का बड़ा उपकार किया। मथुरा चौरासी का स्थान श्री जम्बूकुमार का निर्वाण क्षेत्र प्रसिद्ध है।

बालको! तुम भी जम्बूकुमार के जीवन से शिक्षा ग्रहण करो। प्रतिज्ञा कर लो कि जब तक तुम खूब पढ़-लिख कर होशियार न हो जाओ विवाह नहीं करोगे। पढ़ते हुए तुम पूरे ब्रह्मचर्य से रहोगे और व्यायाम करके शरीर को पुष्ट रखोगे। यदि तुम जम्बुकुमार के समान वीर सैनिक बनोगे तो अपने देश की सच्ची सेवा कर सकोगे तथा अपना आत्म-कल्याण —

कर सकोगे। भावना करो तुम भी प्रत्येक जम्बूकुमार हो और माता-पिता का मुख उज्ज्वल करो।

प्रश्नावली

१. जम्बुकुमार किन के पुत्र थे ? इन्होने कहां तक अध्ययन किया था। इनका स्वभाव कैसा था।
२. जम्बुकुमार की वीरता के कार्य वर्णन करो।
३. जम्बुकुमार को कहाँ और क्यों वैराग्य हो गया था ?
४. चारों स्त्रियां कौन थीं, जो जम्बूकुमार के गृह त्याग के समय पीछे पीछे गई थीं, जम्बुकुमार के वैराग्य होने के पश्चात् उन स्त्रियों ने क्या किया ?
५. जम्बुकुमार का कहां पर निर्वाण हुआ था ?
६. जम्बकुमार की जीवनी से तुम्हें क्या शिक्षा मिलती है।

पाठ ९ पंचपरमेष्ठी

जो महान् आत्मायें 'परमे' अर्थात् उच्च स्वरूप में परम समता भाव से तिष्ठती हैं, वे परमेष्ठी कहलाती हैं। अध्यात्म विकास सर्वोत्कृष्ट से मोक्ष पद पर पहुँची हुई आत्मायें ही परमेष्ठी मानी गई हैं।

अरहन्त, सिद्ध, आचार्य उपाध्याय तथा साधु ये पंच परमेष्ठी हैं। अर्थात् परम इष्ट हैं इनका ध्यान करने से तथा इनका स्मरण करने से भावों की शुद्धि और वैराग्य-उत्पत्ति होती है। पापों का नाश होता है।

[अरहंत परमेष्ठी]

जिन महान आत्माओं ने अष्ट कर्मों में से आत्मा के शुद्ध स्वभाव को भ्रष्ट करने वाले ज्ञानावरणी, दर्शनावरणी, मोहनीय और अन्तराय इन चारों घातिया कर्मों को नष्ट कर दिया है और इनके नष्ट होने पर जिनकी आत्मा में अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत सुख और अनंत वीर्य यह चार गुण प्रकट हो गये हैं वे 'अरहंत परमेष्ठी' कहलाते हैं। अरहंत परमेष्ठी परमौदारिक शरीर के धारी जीवन मुक्त परमात्मा होते हैं। जन्म से उनका शरीर अत्यन्त सुन्दर, सुडौल, परम सुगन्धिमय, पसेव रहित, प्रमल रहित, अतुल बलशाली,

४० यदि तुम्हारे पास कोई विद्या है तो दूसरों को जरूर बताओ

मल-मूत्र रहित होता है, इनका रुधिर सफेद दूध सरीखा होता है, इनके शरीर में १००८ शुभ लक्षण होते हैं। जन्म से ही ये तीन ज्ञान के धारी होते हैं और प्यारे हित के वचन बोलते हैं।

अरहंत परमेष्ठी के जन्म, मरण, जरा, भूख, प्यास, आश्चर्य, पीड़ा, खेद, रोग, शोक, भय, मद, मोह, निद्रा, चिन्ता स्वेद [पसीना] राग, द्वेष ये १८ दोष नहीं होते। उन में चौंतीस अतिशय, आठ प्रातिहार्य तथा अनंत चतुष्टय रूप छियालीस गुण पाये जाते हैं। भगवान् का जब केवलज्ञान हो जाता है तो तीन लोक के चराचर सब ही पदार्थ भूत, भविष्यत्, वर्तमान काल सम्बन्धी सब ही पर्यायों समेत उनके ज्ञान में झलकते हैं। उन पर कोई उपसर्ग नहीं आता, जहाँ जहाँ उनका विहार होता है दूर-दूर से रोग, मरी, दुर्भिक्ष आदि का अभाव हो जाता है, इत्यादिक और भी विचित्र और परम आश्चर्यकारी घटनायें होती हैं। इन्द्रदेव आदि आकर उनके चरणों में नत मस्तक होते हैं। अरहंत परमेष्ठी ही वीतराग सर्वज्ञ और हितोपदेशी सच्चे देव होते हैं। अन्तरंग के शत्रु काम, क्रोध, मद, लोभ, राग द्वेष आदि पर पूर्ण विजय प्राप्त करने वाले और अहिंसा एवं शान्ति के अक्षय, असीम सागर ही श्री

जो अपने आप को जीत लेते हैं वह सबको जीत सकते हैं। ये अरहन्त भगवान कहलाते हैं।

इन्हीं अरहंत भगवान से भव्य जीवों को धर्मोपदेश मिलता है। जिस सभा मंडप में भगवान का उपदेश होता है उसे समवसरण कहते हैं। यहाँ केवल मनुष्य ही नहीं पशु पक्षी तक भी वहाँ पहुँच कर अपना कल्याण कर लेते हैं। भगवान का उपदेश इस प्रकार ध्वनित होता है कि सब प्राणी अपनी २ भाषा मे उसे समझ लेते हैं। यह प्रभु के उपदेश का एक विशेषता है।

जैन मन्दिर मे इन्हीं अरहंत भगवान की परमशांत मुद्रा तथा परम राज्य भाव की उत्कृष्ट प्रतिमायें विराजमान होती हैं जिनका दर्शन पूजन जैन लोग किया करते हैं इनका पूजन केवल अपने परिणामों की शुद्धि के निमित्त ही किया जाता है किसी भय से या किसी आशा से मान बड़ाई के लिए या किसी फलप्राप्ति की इच्छा से नहीं किया जाता। भगवान के गुण का स्मरण हमारे मन को पापरूपी कीच से साफ कर देता है। अरहंत की पूजा गुण पूजा है। अहिंसा, सत्य, क्षमा आदि आध्यात्मिक गुणों का विकास ही गुणपूजा का कारण है। सूर्य कमल को खिलाने के लिए कमल के पास नहीं आता, सूर्य उदय होते ही कमल स्वयं खिल उठते हैं। कमलों के विकास मे सूर्य प्रबल निमित्त

कारण है, साक्षात् कर्त्ता नहीं है । गुण गान संसारी आत्माओं के उत्थान में निमित्त कारण बनता है, सत्पुरुषों क नाम लेने से विचार पवित्र होते हैं । विचार पवित्र होने से अन्य संकल्प नहीं होते । आत्मा में बल साहस शक्ति का संचार होता है निज स्वरूप का भान होता है और तब वन्धन उसी तरह नष्ट हो जाता है जिस तरह लंका में ब्रह्म पास में बँधे हुए हनुमान के दृढ़ बंधन छिन्न भिन्न हो गये थे, कब ? जब कि उसे यह भान हुआ कि मैं हनुमान हूँ, मैं इन्हें तोड़ सकता हूँ ।

अरहन्त का उपासक सतत् प्रयत्न द्वारा परम्परा से स्वयं अरहन्त पद को प्राप्त कर लेता है, जैन धर्म की यह एक विशेषता है ।

[सिद्ध परमेष्ठी]

ऊपर पढ़ चुके हो कि एक संसारी जीव जब अष्ट कर्मों में से ज्ञानावर्ण, दर्शनावर्ण, मोहनीय और अन्तराय इन चार घातिया कर्मों का तपश्चरण द्वारा नाश कर देता है तो जीवन मुक्त अरहंत परमात्मा हो जाता है। वे अरहन्त जब शेष आयु, नाम, गोत्र और वेदनीय चार अघातिया क कर्मों को नष्ट कर देते हैं

तो वे शरीर और संसार के बन्धनों से सदैव के लिए छूट जाते हैं और जिस देह से मुक्ति पाई है उसी देह के आकार ऊर्द्ध्व गमन स्वभाव से लोक के अन्त तक ऊपर जाते हैं। आगे धर्म द्रव्य का अभाव होने के कारण लोक के शिखर पर ही विराजमान रहते हैं और मोक्ष के शाश्वत सुख को भोगते हैं। जन्ममरण के चक्र से सदैव के लिए छुटकारा पाकर अजर अमर सिद्ध बुद्ध मुक्त होकर मोक्ष को प्राप्त हो 'सिद्धपद' में सम्स्थापित होते हैं, फिर कभी लौटकर संसार में आते नहीं। वैसे तो सिद्ध परमेष्ठी अनन्त गुणों के स्वामी होते हैं, पर उनमें नीचे लिखे आठ मुख्य होते हैं—क्षायिक सम्यक्, अनन्तदर्शन, अनन्तज्ञान, अगुरुलघुत्व, अवगाहनत्व, सूक्ष्मत्व, अनन्तवीर्य और अव्याबाधत्व।

प्रत्येक मुमुक्षु भव्यात्मा भेद विज्ञान के द्वारा अपने शुद्ध चिदानन्द रूप निज स्वभाव को पहचान कर उसमें ही रमण करता है तो वह वीतराग भाव को बढ़ाता हुआ कर्म बन्धनों को काटता हुआ आगे बढ़ता हुआ चला जाता है, ध्यानाग्नि द्वारा कर्ममल को दग्ध कर परमपद मोक्षपद को प्राप्त कर सकता है। सर्व विकारों से तथा शरीरादिक से रहित अमूर्तिक हो, शुद्ध चैतन्यमय अविनाशी सिद्ध परमात्मा हो जाता है और

निरावरण अनन्तदर्शन तथा अनन्तज्ञान स्वरूप को लिये परम ज्ञानानंद में अतिशयमग्न निरन्तर ही लोक के शिखर स्थित मोक्ष स्थान में प्रकाशमान रहता है।

[आचार्य परमेष्ठी]

जैनधर्म में आचरण का बड़ा महत्व है पद-पद पर सदाचार के मार्ग पर ध्यान रखना ही जैन साधु की श्रेष्ठता का प्रमाण है। अस्तु जो पांच आचार का स्वयं पालन करते हैं और संघ को नेतृत्व करते हुए दूसरों से पालन कराते हैं वे 'आचार्य' कहलाते हैं। आचार्य दीक्षा और शिक्षा का कार्य करते हैं। जैन आचार के अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह ये पाँच मुख्य अंग हैं आचार्य को इन पांचों महाव्रतों का प्राण पण से स्वयं पालन करता होता है। अन्य भव्य आत्माओं को भी भूल होने पर उचित प्रायश्चित आदि देकर सत्पथ पर अग्रसर करना होता है। साधु साध्वी श्रावक और श्राविका ये चार प्रकार का संघ होता है इनकी आध्यात्मिक साधना के नेतृत्व का भार आचार्य पर होता है।

आचार्य बड़े तपस्वी होते हैं। वे सर्व प्रकार के भोजन का त्याग करके उपवास करते हैं। भूख से कम

भोजन लेते हैं। भोजन के लिए जाते हुए कड़ी आखड़ी लेकर जाते हैं। किसी को अपनी आखड़ी बताते नहीं आखड़ी पूरी न हो तो समता भाव के साथ उपवास करते हैं। दूध, दही, घी, मीठा, नमक और तेल इन छहों रसों में से यथाशक्ति एक या अधिक का त्याग करते हैं, नीरस भोजन करते हैं, एकान्त स्थान में शय-आसन करते हैं, शरीर का सुखियापन मिटाने के लिए घोर तपस्या करते हैं। इनके अतिरिक्त लगे हुए दोषों का दंड लेते हैं। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान तथा सम्यक् चारित्र रूप रत्नत्रय की तथा रत्नत्रय धारकों की विनय करते हैं। संघ में रोगी तथा वृद्ध अशक्त मुनियों की सेवा करते हैं। शास्त्र स्वाध्याय तथा आत्मध्यान में रत रहते हैं। शरीर से ममत्व भाव को हटाते हैं। उत्तम क्षमा, मार्दव, आर्जव, शौच, सत्य, संयम, तप, त्याग, आकिंचन्य और ब्रह्मचर्य इन दस लक्षण का निर्दोष पालन करते हैं। प्राणी मात्र से समता भाव रखते हैं, जिनेन्द्र प्रभु को नमस्कार करते हैं। पंच परमेष्ठी की स्तुति करते हैं, लगे हुए दोषों का पश्चाताप करते हैं। शास्त्रों का स्वाध्याय करते हैं। और शरीर से ममत्व भाव को त्याग आत्मध्यान आदि कर्मों की निर्जरा हेतु

करते हैं। आचार्य सदा काल सम्यग्दर्शन की निर्मलता सम्यग्ज्ञान की वृद्धि तथा सम्यक् चारित्र की विशुद्धता के लिए प्रयत्नशील रहते हैं। तप की वृद्धि करते हुए अपने आत्म बल को अधिकाधिक विकास में लाते हैं, सदैव ही अपने मन, वचन, काय पर पूरा काबू रखते हैं।

जैनाचार्य बड़े सदाचारी, दृढ़ प्रतिज्ञ, दयालु, निस्पृही, तपस्वी तथा ज्ञानी ध्यानी और पराक्रमी तथा साहसी हुआ करते हैं, परोपकार बुद्धि तथा धर्म भावना को लेकर ही प्राचीन आचार्यों ने कितने जैन-सिद्धांत ग्रन्थों तथा साहित्य का प्राकृत, संस्कृत तथा तामिल आदि भाषाओं में निर्माण किया है जो आज भी जैन शास्त्र भंडारों की शोभा को बढ़ा रहे हैं और कितने ही भव्य जीवों को उनके कल्याण के मार्ग का दिग्दर्शन करा रहे हैं।

[उपाध्याय परमेष्ठी]

जो विशेष ज्ञानी मुनिराज स्वयं पढ़ते हैं तथा अन्य शिष्यों को पढ़ाते हैं "उपाध्याय" कहलाते हैं ये ११ अंग तथा १४ पूर्वों के पाठी होते हैं। जिनवाणी का पठन पाठन करते हैं। अनेक शास्त्रों की रचना करते हैं वास्तव में विद्या वही है जो हमें विषय वास

नाओं से मुक्त कर सकें, अस्तु विवेकज्ञान की बड़ी आवश्यकता है । भेद विज्ञान के द्वारा जड़ और आत्मा के जुदा २ होने का ज्ञान होने पर ही साधक अपना ऊँचा एवं आदर्श जीवन बना सकता है ऐसी आध्यात्मिक विद्या के शिक्षण का भार उपाध्याय पर है । उपाध्याय महाराज मनुष्य जीवन की अन्तःग्रन्थियों को बड़ी सूक्ष्म पद्धति से सुलझाते हैं और अनादिकाल से अज्ञान अंधकार मे भटकते हुए भव्य प्राणियों को विवेक का प्रकाश प्रदान करते हैं ।

[साधु परमेष्ठी]

जो मोक्ष पुरुषार्थ का साधन करते हैं उन्हें साधु कहते हैं । उनके पास कुछ भी परिग्रह नहीं होता और न वह कोई आरम्भ करते हैं । वे सदा ज्ञान मे लीन रहते हैं जो ससार वासनाओं को त्याग कर पांचों इन्द्रियों को अपने वश मे रखते हैं, ब्रह्मचर्य की नौ बाड़ों की रक्षा करते हैं । क्रोध, मान, माया, लोभ पर यथाशक्ति विजय प्राप्त करते हैं । अहिंसा, अचौर्य, सत्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रहरूप पांच महाव्रत पालते हैं । पांच समिति और तीन गुप्तियों की सम्यक्तया आराधना करते हैं । ज्ञानाचार, दर्शनाचार, चारित्राचार तपाचार, वीर्याचार इन पंचाचारों के पालन मे लिन

रात संलग्न रहते हैं वे साधु कहलाते हैं।

जैन साधु मन, वचन, कार्य से सर्वथा हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह इन पंच पापों के त्यागी होते हैं, उनके पास तिल-तुषमा भी परिग्रह नहीं होता है। जब वह चलते हैं तो प्रमाद रहित चार हाथ प्रमाण आगे प्राशुक भूमि को शोध कर दिन में भूमि पर चलते हैं। सदा हित मित वचन बोलते हैं। दिन में एक बार निर्दोष शुद्ध आहार लेते हैं। अपने पास के ज्ञानोपकरण शास्त्र तथा शुद्धि के उपकरण कमंडलु और पीछी को, भूमि को खूब अच्छी तरह देख भाल कर सावधानी से धरते और उठाते हैं। जीव जन्तु रहित प्राशुक भूमि देख कर अपने मल मूत्रादि को डालते हैं।

पांचों इन्द्रियों को वश में रखते हैं, उनके इष्ट अनिष्ट विषयों के प्रति राग-द्वेष नहीं करते, इन्द्रिय विजयी होते हैं। प्राणी मात्र पर समता भाव रखते हैं, जिनेन्द्र प्रभु को वन्दना नमस्कार करते हैं। पंच परमेष्ठी की स्तुति करते हैं। लगे हुए दोषों का पश्चाताप करते हैं, शास्त्रों का पठन पाठन तथा मनन करते हैं। शरीर से ममत्व छोड़ खड़े होकर ध्यान करते हैं। दिगम्बर जैन साधु स्नान नहीं करते, स्वच्छ भूमि पर पत्थर की शिला पर या काठ के पाटे आदि पर सोते

हैं, नग्न रहते हैं, बालों का अपने हाथ से लोंच करते हैं, दिन में एक बार खड़े होकर पाणिपात्र में ही आहार लेते हैं, दन्त धोवन नहीं करते । इस प्रकार साधु २८ मूल गुणों के धारक होते हैं।

वास्तव में सच्चे गुरु अर्थात् साधु क्षमा गुण से भूषित, दिगम्बर, पृथ्वी के समान अचल, समुद्र के समान गम्भीर, वायु के समान निःपरिगृही, अग्नि के समान कर्म भस्म करने वाले, आकाश के समान निर्लेप, जल के समान स्वच्छ चित के धारक एवं मेघ के समान परोपकारी होते हैं। जो साधु परमज्ञानी परमध्यानी तथा दृढ़ वैरागी होते हैं, वे ही सच्चे साधु हैं, वे ही परमपूज्य तथा जगतवन्द्य हैं।

इन पंच परमेष्ठी में से अरहंत सिद्ध दो परमेष्ठी देवकोटि में आते हैं और अन्तिम तीन आचार्य, उपाध्याय, साधु गुरु कोटि में। आचार्य, उपाध्याय और साधु तीनों अभी साधक ही हैं अतः अपने से नीचे श्रेणी वाले श्रावक आदि साधकों के पूज्य और उच्च श्रेणी के अरहन्त आदि देवत्व के पूजक होने से गुरुत्व की कोटि में हैं। इन पंच परमेष्ठी का स्मरण करने से, आराधन करने से पापों का नाश हो जाता है और आत्मिक गुणों का विकास होता है।

छप्पय

प्रथम नमूं अरहन्त, जाहि इन्द्रादिक ध्यावत।
बंदूं सिद्ध महंत, जासु सुमरत सुख पावत॥
आचारज वंदामि, सकल श्रुत ज्ञान प्रकाशत।
वंदत हूँ उवझाय, जास वंदत अघ नाशत।
जे साधु सकल नर लोक में, नमत तास संकट हरन
यह परम मंत्र नितप्रति जपो, विघन मंगल करन।

प्रश्नावली

१. परमेष्टी से आप क्या समझते हैं? परमेष्टी कितने होते हैं? उनके नाम बताओ।
२. अरहंत परमेष्ठो किन्हें कहते हैं? उनके जो गुण आपको मालूम हैं अपने सरल शब्दों में बताइये।
३. अरहत परमेष्ठी में कौन-कौन से १८ दोष नहीं पाये जाते ?
४. अरहंत परमेष्ठी की पूजा, वंदना से हमें क्या लाभ होता है?
५. सिद्ध परमेष्ठी किन्हें कहते हैं? उनके मुख्य गुण बतलाइये।
६. सिद्ध परमेष्ठो और अरहंत परमेष्ठी में क्या अन्तर है।
७. आचार्य परमेष्ठी और उपाध्याय परमेष्ठी किन्हें कहते हैं। दोनों के गुण बताओ, दोनों में क्या अंतर है उनमें से पहले किसको नमस्कार किया जाता है और क्यों?
८. साधु परमेष्ठी किसे कहते हैं, उनके मुख्य गुण बताओ, आचार्य, उपाध्याय तथा साधु परमेष्ठी में क्या अन्तर है ?
९. पंच परमेष्टी में कौन ३ साध्य हैं और कौन साधक हैं?
१०. इन पंच परमेष्ठी के स्मरण तथा आराधना से संसारी प्राणियों को कोई लाभ होता है या नहीं?

पाठ १८ गुरु स्तवन

ते गुरु मेरे उर बसो, तारन तरन जहाज ।
आप तिरें पर तारहीं, ऐसे श्री मुनिराज । ते गुरु।टेक
मोह महारिपु जीत के, छोड़ दियो घरबार ।
होय दिगम्बर वन बसे, आतम शुद्ध विचार ॥१॥ ते०
रोग उरग बपुबिल गिन्यो, भोग भुजंग समान ।
कदली तरु संसार है, छाड़यो यह सब जान ॥२॥ ते०
रत्नत्रय निधि उर धरें, अरु निग्रन्थ त्रिकाल ।
जीते काम पछीस को, स्वामी परम दयाल ॥३॥
धर्म धरें दश लक्षणी, भावें भावना सार ।
सहें परिषह बीस दो, चारित्र रत्न भण्डार ॥४॥ ते०
जेठ तपै रवि आकरो, सूखे सरवर नीर ।
शैल शिखर मुनि तप तपैं, दाहैं नगन शरीर ॥५॥ ते०
पावस रयन डरावनी, बरसे जलधर धार ।
तरु तल निवसें साहसी, चाले झंझा ब्यार ॥६॥ ते०
शीत पड़े कपि मद गले, दाहैं सब बन राय ।
ताल तरंगनि के तटैं, ठाड़े ध्यान लगाय ॥७॥ ते०
इस विधि दुद्धर तप तपें, तीनों काल मझार ।
लागे सहज स्वरूप में, तन सों ममता टार ॥८॥ ते०

रंग महल में सोवते, कोमल सेज विछाय।
ते सोवें निशि भूमि में, पोढ़ें संवर काय ॥९॥ ते०
गज चढ़ चलते गर्व से, सेना सज चतुरंग।
निरख-निरख पग वे धरें, पालें करुणा अंग ॥१०॥ते०
पूरव भोग न चिंतवें, आगम वांछा नाहिं।
चहुँ गति के दुख से डर, सुरति लगी शिव मांहि ११ ते०
ये गुरु चरण जहां धरें, जग में तीरथ होय।
सो रज मम मस्तक चढ़ो, 'भूधर' मांगे सोय ॥१२॥ ते०

प्रश्नावली

१. गुरु स्तवन से तुम क्या समझते हो? बताओ इसके बनाने वाले कौन हैं?
२. वास्तविक गुरु कौन हैं और उनमें क्या-क्या विशेषतायें होनी परमावश्यक है?
३. परिग्रह कितनी होती हैं इनको कौन और किसलिए सहते हैं?
४. संसार सागर से तरने के लिए गुरु किसके समान होते हैं?
५. दश लक्षण धर्म के नाम बताओ?
६. बारह भावनाओं के नाम बताओ?
७. रत्नत्रय किसे कहते हैं?

पाठ ११ गृहस्थों के दैनिक षट् कर्म

गृहस्थी लोग पाप क्रियाओं का सर्वथा त्याग नहीं कर सकते। गृहस्थ में रहते हुए खाने पीने, धन कमाने, मकान बनवाने, विवाह आदि करने के लिए अनेक

प्रकार कार्यारम्भ करने पड़ते हैं, जिनको करते हुए भी हिंसादि के दोष लग ही जाते हैं। इन्हीं के साथ दोषों को दूर करने, पुण्यबन्ध करने तथा अपनी आत्मोन्नति करने के लिए शास्त्रों में गृहस्थ के छः दैनिक कर्तव्य बताए गये हैं।

देवपूजा गुरूपास्ति, स्वाध्यायः संयमस्तपः।
दानं चेति गृहस्थानां, षट् कर्माणि दिने-दिने ॥

अर्थात्—नित्य प्रति जिनेन्द्र देव की पूजा करना, गुरु की भक्ति करना, स्वाध्याय करना, संयम का पालन करना, तप का अभ्यास करना और दान का देना, ये गृहस्थों के छः दैनिक कर्तव्य हैं।

१. देवपूजा—श्री अरहन्त तथा सिद्ध भगवान का पूजन करना। यदि अरहन्त भगवान साक्षात मिलें तो उनकी सेवा में जाकर अष्ट द्रव्य से भक्ति सहित पूजन करना चाहिये, अन्यथा उनकी वैसी ही ध्याना-कार शान्तिमय वीतराग प्रतिमा को विराजमान करके उसके द्वारा अरहन्त भगवान का पूजन करना चाहिये। हमारी आत्मा पर जैसा प्रभाव साक्षात् अरहन्त के दर्शन व पूजन से पड़ता है वैसा ही प्रभाव उनकी ध्यानमय वीतराग प्रतिष्ठित प्रतिमा के दर्शन व पूजन से पड़ता है। प्रत्यक्ष देखा जाता है कि जैसे चित्र देखने

में आते हैं वैसे ही भाव देखने वाले के चित्त में अवश्य पैदा होते हैं। मन्दिर में भगवान की वीतराग शान्ति-मय प्रतिमा के देखने से हृदय आप ही आप वैराग्य भाव से भर जाता है और उनके निर्मल गुण स्मरण हो जाते हैं उसके भाव शुद्ध होते हैं इसलिए गृहस्थों को चाहिए कि वे नित्य प्रति अष्ट द्रव्य से या किसी एक द्रव्य से भगवान का पूजन करे। प्रतिमा की स्थापना मात्र भावों को बदलने के लिए है। प्रतिमा से कुछ मांगने की न जरूरत है, न प्रतिमा इसलिए स्थापित ही की जाती है।

देव पूजा से पापों का क्षय और पुण्य का बन्ध होता है तथा मोक्षमार्ग की प्राप्ति होती है। दर्शन प्रत्येक बालक-बालिका, स्त्री-पुरुष को नित्य करना चाहिये। पूजन यदि नित्य न हो सके तो कभी कभी अवश्य करनी चाहिये। जहाँ प्रतिमा या मन्दिर का समागम न हो वहां परोक्ष ध्यान करके स्तुति पढ़ लेनी चाहिये तथा एक दो जाप और पाठ करके भोजन करना चाहिए।

२. गुरुभक्ति—गुरु शब्द का अर्थ यहां सच्चे धर्म गुरु अर्थात् मुनि महाराज से समझना चाहिए निर्ग्रन्थ गुरु की सेवा पूजा संगति करना "गुरुभक्ति" कहलाती

है। गुरु साक्षात उपकार करने वाले होते हैं, वे अपने उपदेश द्वारा गृहस्थों को सदा धर्म कार्य की प्रेरणा दिया करते हैं। गुरु तारण तरण जहाज हैं। आप संसार रूपी समुद्र से पार होते हैं और दूसरे जीवों को भी पार उतारते हैं। इसलिए गृहस्थों को सदा भक्ति पूर्वक गुरु उपासना तथा सेवा करना चाहिए। यदि अपने स्थान में गुरु महाराज न हों तो उनका स्मरण करके मन पवित्र करना चाहिये तथा धर्म के प्रचारक ऐलक, क्षुल्लक, ब्रह्मचारी आदि हों तो उनकी सेवा संगति करके धर्म का ज्ञान प्राप्त करना चाहिए।

३. स्वाध्याय—तत्त्व बोधक जैन शास्त्रों को विनयपूर्वक भक्ति सहित समझ समझ कर पढ़ना और दूसरों को सुनाना चाहिए—यदि पढ़ना न आवे तो सुनना व धर्मचर्चा करनी चाहिए। जिस-जिस तरह हो सके ज्ञान को बढ़ाना चाहिए। स्वाध्याय एक प्रकार का तप है। इससे बुद्धि का विकास होता है। परिणाम उज्ज्वल होते हैं, अनेक गुणों की प्राप्ति होती है।

४. संयम—पापों से बचने के लिए अपनी क्रियाओं का नियम बांधना चाहिए। पांचों इन्द्रियों और मन को वश में करने के लिए नित्य सवेरे ही २४ घण्टे के लिए भोग उपभोग के पदार्थों को अपने काम के योग्य

रख के शेष का त्याग करना चाहिए, जैसे आज हम मीठा भोजन नहीं खायेंगे । सांसारिक गीत नहीं सुनेंगे । वस्त्र इतने काम में लेंगे इत्यादि । तथा पृथ्वी, जल अग्नि, वायु, वनस्पति और त्रस इन छः प्रकार के जीवों की रक्षा का भाव रखना और व्यर्थ उनको कष्ट न देना चाहिए । इसलिए गृहस्थों के लिए जरूरी है कि वह नित्य प्रति संयम पालन का अभ्यास किया करें । संयम एक दुर्लभ वस्तु है । संयम का पालन केवल मनुष्य गति में ही हो सकता है । संयम के बिना मनुष्य जन्म निष्फल होता है । विद्यार्थियों को चाहिए कि वह भावना भावें कि उसके जीवन की एक घड़ी भी संयम के बिना न जावे । संयम पालने के लिए उचित है कि हम बुरी आदतों को छोड़ें । अपना खान पान आदि सादा रखें । फैशन के दास न बनें । चाय, सोड़ा, तम्बाकू, बीड़ी, चुरट आदि नशे की चीजें, मसालेदार चाट, खोमचे और बाजार की बनी हुई अशुद्ध मिठाई आदि का सेवन न करें । भावों को बिगाड़ने वाले नाटक, सिनेमा, नाच, स्वांग, तमाशे न देखें तथा विकार पैदा करने वाले उपन्यास तथा कहानियाँ न पढ़ें ।

५. तप—से मतलब नित्य सवेरे व शाम एकान्त में बैठकर सामयिक करने से है । आत्म ध्यान की

धर्म में दृढ़ रहना अपना कर्त्तव्य जाना।

अग्नि में आत्मा को तपाना तप है। इससे कर्मों का नाश होता है। बड़ी शान्ति मिलती है। आत्म-सुख का स्वाद आता है। आत्म-बल की वृद्धि होती है इस-लिए सवेरे शाम सामायिक अवश्य ही करना चाहिए।

६. दान—अपने और पर के उपकार के लिए फल की इच्छा के बिना प्रेमभाव से धनादि का तथा स्वार्थ का त्याग करना दान कहलाता है। जो दान मुनियों, व्रती, श्रावकों तथा अव्रती सम्यक्ती श्रेष्ठ पुरुषों को भक्ति सहित दिया जाता है वह पात्र दान कहलाता है। और जो दान दीन दुखी, भूखे, अपाहज, विधवा अनाथों को करुणाभाव से दिया जाता है, वह करुण दान है।

दान चार प्रकार के होते हैं १ आहार दान २. औषधि दान ३ ज्ञान दान ४. अभयदान।

[क] आहारदान मुनि, त्यागी, श्रावक, ब्रह्म-चारी तथा लंगड़े लूले, भूखे और अनाथ विधवाओं आदि को भोजन देना आहार दान है।

[ख] औषधि दान—रोगी स्त्री पुरुषों को औषधि देना, उनकी सेवा टहल करना, औषधालय खोलना, औषधिदान है।

[ग] ज्ञानदान—पुस्तकें बाँटना, पाठशालायें

खोलना, व्याख्यान देकर तथा शास्त्र सुनाकर धर्म और कर्त्तव्य का ज्ञान कराना, असमर्थ विद्यार्थियों को छात्र-वृत्ति देना ज्ञानदान है।

[घ] अभयदान—जीवों की रक्षा करना, धर्म साधन के लिए स्थान बनवाना चौकी पहरा लगवा देना धर्मात्मा पुरुषों को दुःख और संकटों से निकालना, दीन दुखी मनुष्य, पशु, पक्षी भयभीत हों, जान से मारे जाते हों, अथवा सताये जाते हों तो तन, मन, धन से उनके प्राण बचा उनका भय दूर करना अभयदान है। मानवों व पशुओं के भय निवारण के लिए धर्मशाला व पशुशाला बनवाना अभयदान है।

ऊपर लिखे चारों प्रकार के दानों में से कुछ न कुछ नित्य प्रति करना गृहस्थी का नित्य दैनिक दान कर्म है। सवेरे भोजन करने से पहिले आधी रोटी दान के लिए निकाले बिना भोजन न करना चाहिए। गृहस्थों को उचित है कि जो पैदा करें उसका चौथाई भाग या छटा या आठवां या कम से कम दसवां भाग दान व धर्म की उन्नति के लिए निकालें, अपना जीवन सादगी से वितावें, विवाह आदि में कम खर्च करें, परोपकार में अधिक धन लगावें।

प्रश्नावली

१. गृहस्थों के दैनिक कर्त्तव्य कितने होते हैं और वे इनका पालन किस प्रकार करते हैं ?
२. 'दैनिक कर्म' कितने हैं ? नाम बताओ। बताओ इनका नाम दैनिक कर्म क्यों रक्खा गया ?
३. देव पूजा में क्या अभिप्राय है ? यदि साक्षात् भगवान न मिलें तो उस अवस्था में क्या करना चाहिए ? देव पूजा में क्या लाभ है ?
४. गुरु भक्ति व स्वाध्याय से तुम क्या समझते हो ? बताओ स्वाध्याय करने से क्या लाभ है ?
५. संयम किसे कहते हैं ? और संयम रखना क्यों आवश्यक है ? संक्षेप में बताओ कि कौन से कर्मों का त्याग संयम माना जा सकता है ?
६. बताओ गृहस्थों के दैनिक कर्मों में तप का क्या अर्थ है ?
७. दान किसे कहते हैं और यह कितने प्रकार का है ?
८. धर्मशाला, दवाखाना, पाठशाला, पुस्तकालय तथा औषधालय, गुरुद्वारा और भिखारियों को भोजन देना, ये कौन से दान हैं ?

पाठ १२ श्रावक के पांच अणुव्रत (अ)

हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह इन पाँचों पापों का बुद्धि पूर्वक त्याग करना व्रत कहलाता है।

व्रत के दो भेद हैं महाव्रत और अणुव्रत। मन-वचन-काय से पाँचों पापों का बुद्धि पूर्वक सम्पूर्ण त्याग

करना महाव्रत कहलाता है इनका पालन मुनिराज ही कर सकते हैं ।

हिंसादि पांच पापों का मोटे रूप से एक देश त्याग करना अणुव्रत कहलाता है । अणुव्रत पांच हैं:—

१. अहिंसाणुव्रत २. सत्याणुव्रत ३. अचौर्याणुव्रत ४. ब्रह्मचर्याणुव्रत ५. परिग्रहपरिमाण अणुव्रत ।

क. अहिंसाव्रत – त्रस जीवों की संकल्पी हिंसा का त्याग करना अहिंसा अणुव्रत कहलाता है ।

दूसरे भाग में तुम पढ़ चुके हो कि प्रमाद के वश होकर अपने या दूसरे के घात करने या दिल दुखाने को हिंसा कहते हैं यह चार प्रकार की होती हैं ।

१. संकल्पीहिंसा-उसे कहते हैं जो इरादे से की जाय, अर्थात् मांस भक्षण के लिए, धर्म के नाम पर बलि चढ़ाने के लिए, शिकार वगैरा का शौक तथा फैशन को पूरा करने के लिए जो जीवों का वध किया जाता है उसे संकल्पीहिंसा कहते हैं ।

२. उद्यमीहिंसा—खेती व्यापार करने, कल कारखाने चलाने आदि रोजगार करने में जो हिंसा होती है उसको उद्यमी हिंसा कहते हैं ।

३. आरम्भीहिंसा—रसोई बनाना, अन्न को कूटना तथा बुहारी देना, मकान आदि बनवाना, उसको

सींचना, पीसना आदि में जो हिंसा होती है उसे आरम्भी हिंसा कहते हैं।

४. विरोधीहिंसा—शत्रु से अपने जान माल तथा अपने देश और धर्म की रक्षा करने के लिए युद्ध आदि करने में जो हिंसा होती है उसे विरोधी हिंसा कहते है।

इन चारों हिंसाओं में से श्रावक केवल संकल्पी हिंसा का त्याग कर सकता है, स्थावर जीवों की भी व्यर्थ हिंसा नहीं करता है। यद्यपि बाकी तीन हिंसाओं का सर्वथा त्याग श्रावक गृहस्थी में रहते हुए नहीं कर सकता तो भी उसको सब कार्यों के करने में यत्न और नीयत से ही व्यवहार करना चाहिए। इस व्रत का धारी श्रावक कषाय से किसी भी प्राणी को बंधन में नहीं डालता, लाठी चाबुक आदि से नहीं मारता। किसी जीव के नाक-कान, पूँछ आदि अङ्गोपांग का छेदन नहीं करता है। किसी जीव पर उसकी शक्ति से अधिक बोझा नहीं लादता अपने अधीन मनुष्यों तथा पशुओं को भूखा प्यासा नहीं रखता है। यदि वह ऐसा करता है तो उसके व्रत में दोष लगता है।

ख. सत्याणुव्रत—स्थूल झूठ बोलने का त्याग करना सत्याणुव्रत कहलाता है। इस व्रत का धारक

करने वाला स्थूल [मोटा] झूठ न तो आप बोलता है न दूसरों से बुलवाता है और ऐसा सच भी नहीं बोलता है कि जिसके बोलने से किसी जीव का अथवा धर्म का घात होता है। इस व्रत का धारी झूठा उपदेश नहीं देता है। दूसरे के दोष प्रकट नहीं करता है। विश्वासघात नहीं करता है। झूठी गवाही नहीं देता है झूठे जाली कागज, तमस्सुक, रसीद आदि नहीं बनाता है, जाली हस्ताक्षर मोहर वगैरह नहीं बनाता है।

ग. अचौर्याणुव्रत—प्रमाद के वश होकर दूसरों की बिना दी हुई वस्तु को ग्रहण करने का त्याग करना अचौर्याणुव्रत है। इस व्रत का धारी किसी की गिरी पड़ी भूली या रक्खी हुई वस्तु को न तो आप लेता है और न उठाकर दूसरों को देता है।

इस व्रत का धारी दूसरों को चोरी का उपाय नहीं बताता। चोरी का माल नहीं लेता। राजा के महसूल आदि की (जैसे महसूल चुङ्गी रेलवे टिकट आदि) चोरी नहीं करता। बढ़िया चीजों में घटिया मिलाकर बढ़िया के मोल में नहीं बेचता। जैसे दूध में पानी मिलाकर, घी में चर्बी मिलाकर नहीं बेचता। नापने तोलने के गज बांट तराजू वगैरह हीनाधिक 'कम या ज्यादा' नहीं रखता। यदि ऐसा करता है तो उसका व्रत दूषित हो जाता है।

४. ब्रह्मचर्याणुव्रत—अपनी विवाहिता स्त्री के सिवाय अन्य स्त्रियों से काम सेवन का त्याग करना ब्रह्मचर्याणुव्रत है। इस व्रत का धारी अपनी स्त्री को छोड़कर बाकी स्त्रियों को अपनी पुत्री और बहन के समान समझता है। कभी किसी को बुरी निगाह से नहीं देखता। वह अपने आधीन कुटुम्बीजनों के सिवाय दूसरों के रिश्ते नाते नहीं करता। वेश्या तथा व्यभिचारिणी 'बदचलन' स्त्रियों की संगति नहीं करता और न उनसे किसी प्रकार का सम्बन्ध रखता है। काम के नियत अंगों को छोड़कर और अंगों में कुचेष्टाएं नहीं करता। अपनी स्त्री से भी काम सेवन का अधिक लालसा नहीं रखता है। यदि वह ऐसा करता है तो उसका व्रत मलिन होता है।

नोटः—स्त्री को भी विवाहित पुरुष में ही सन्तोष धारण करना चाहिए। अपने पति के सिवाय अन्य पुरुषों को पुत्र, भाई तथा पिता के समान समझना चाहिए। ऐसे भाव करने से ही पतिव्रत धर्म का रूप ब्रह्मचर्य का पालन होता है। स्त्रियों को भी उन सब कारणों से बचना चाहिये जो कि उनके शीलव्रत को दूषित रखने वाले हों।

५. परिग्रह परिमाण अणुव्रत—अपनी इच्छा-

नुसार खेत, मकान, रुपया, सोना, चांदी, गौ, बैल, घोड़ा, अनाज, दासी, दास, वस्त्र, वर्तन वगैरह वस्तुओं का इस प्रकार परिमाण कर लेना कि मैं जन्म भर के लिए इतना रखूँगा बाकी सबका त्याग कर देना परिग्रह परिमाण अणुव्रत है। इस व्रत का धारी अपने किए हुए परिमाण का उल्लंघन नहीं करता है, किन्तु जितना परिग्रह उसने रखा है, उसमें ही सन्तुष्ट रह अधिक तृष्णा नहीं करता है। जब प्रतिज्ञा पूर्ण हो जाती है, तो संतोष से अपना जीवन धर्म साधनव परोपकार में विताता है।

प्रश्नावली

१. व्रत किसे कहते हैं और व्रत के कितने भेद हैं ?

२. अहिंसाणुव्रत किसे कहते हैं ? बताओ हिंसा कितने प्रकार की है ? श्रावक सभी हिंसाओं का त्याग कर सकता है ?

३. सत्याणुव्रत अचौर्याणुव्रत का धारी कौन-कौन से काम को नहीं करेगा ? एक चोर की प्राण रक्षा के लिए झूठी गवाही देना अच्छा है या बुरा ?

४. ब्रह्मचर्याणुव्रत किसे कहते हैं ? ब्रह्मचर्याणुव्रत के धारी के लिए कौन कार्य त्याज्य हैं ? बताओ इस व्रत का धारी वेश्या का नाच देखेगा या नहीं ?

५. परिग्रह परिणाम का क्या अभिप्राय है ?

पाठ १३ श्रावक के व्रत व ३ गुणव्रत

गुणव्रत उन्हें कहते हैं जो अणुव्रतों का उपकार करे और अणुव्रतों का मूल्य गुणन रूप बढ़ा देवे। गुणव्रत तीन होते हैं। १ दिग्व्रत, २. देशव्रत, ३. अनर्थदण्डव्रत।

क. दिग्व्रत—लोभ के आरम्भ को कम करने के लिए जन्म भर के लिए दशों दिशाओं में आने जाने की हद बांध लेना दिग्व्रत कहलाता है। इस व्रत का धारी इस प्रकार नियम करता है कि मैं जन्म पर्यन्त अमुक दिशा में, अमुक नदी, पर्वत, नगर से आगे नहीं जाऊँगा जैसे किसी मनुष्य ने पूर्व में कलकत्ता, पश्चिम में सिन्धु नदी, उत्तर में हिमालय पर्वत और दक्षिण में कन्याकुमारी से आगे नहीं जाने का नियम लिया और फिर उसका भली भांति पालन किया, उसका यह नियम दिग्व्रत कहलाता है।

इस व्रत के धारी को चाहिए कि अपने किये नियम की मर्यादा को भली भांति याद रक्खे और लोभादिक के वश में होकर उसमें कोई घटा बढ़ी न करे।

ख. देशव्रत—घड़ी, घण्टा, दिन, पक्ष, महीना, वगैरह नियत समय तक दिग्व्रतमें की हुई मरयादा को और

भी घटा लेना देशव्रत है। जैसे दिग्व्रत में किसी ने यह नियम किया कि जन्म भर वह पूर्व दिशा में कलकत्ते से आगे नहीं जावेगा। अब नियम करता है कि मैं चौमासे में अपने शहर से बाहर कहीं नहीं जाऊँगा। वह किसी दिन यह नियम और भी कर लेवे कि आज मैं मन्दिर में ही रहूँगा, मन्दिर से बाहर कहीं नहीं जाऊँगा, तो यह उसका देशव्रत समझना चाहिए। इस व्रत का धारी मर्यादा से बाहर क्षेत्र में न आप जाता है न किसी दूसरे को भेजता है, न वहां से कोई चीज वगैरह मंगवाता है, न भेजता है और न कोई पत्र-व्यवहार करता है। धर्म कार्य के लिए मनाई नहीं है।

याद रखो दिग्व्रत जीवन पर्यन्त होता है और देश-व्रत कुछ नियत समय के लिए होता है।

ग. अनर्थदण्डव्रत—बिना प्रयोजन हो जिन कार्यों में पाप का आरम्भ हो, उन कार्यों का त्याग करना अनर्थदण्डव्रत है।

इस व्रत का धारी पांच प्रकार के अनर्थों से अपने को बचाता है।

१. पापोपदेश—वह बिना प्रयोजन किसी को ऐसा कोई कार्य करने का उपदेश नहीं देता जिसमें पाप हो।

२. हिंसादान—हिंसा के औजार तलवार, पिस्तौल,

फावड़ा, कुदाल, पींजरा, चूहेदान--आदि किसी दूसरे को वध के लिए मांगे नहीं देता।

३. अपध्यान--दूसरों का बुरा नहीं चाहता है। दूसरों की स्त्री, पुत्र, धन, आजीविका आदि नष्ट होने की इच्छा नहीं करता है। दूसरे मनुष्यों तथा जानवरों को लड़ाई देखकर खुश नहीं होता, किसी की हार-जीत में आनन्द नहीं मानता।

४. दुःश्रुति--परिणामों को बिगाड़ देने वाली कहानी, किस्से, नाविल, स्वांग, तमाशे, नाटक वगैरह की किताबें नहीं पढ़ता और नहीं सुनता।

५. प्रमादचर्या बिना प्रयोजन जल नहीं डालता, अग्नि नहीं जलाता, जमीन नहीं खोदता, वृक्ष, पत्ते, फल, फूल आदि को नहीं तोड़ता। इस व्रत के पालन करने वाले को चाहिये कि अपनी जबान से कोई झूठ वचन न कहे। शरीर से कोई कुचेष्टा न करे। स्वयं बकवास और फिजूल की दौड़-धूप से बचता रहे और अपनी आवश्यकता से अधिक भोग-उपभोग की सामग्री इकट्ठी न करे। यदि वह ऐसा करता है तो वह अपने नियम को मलिन करता है।

प्रश्नावली

१. गुणव्रत का मतलब बताओ, गुणव्रत कितने होते हैं नाम लिखो

जो पास आवे उसका सत्कार करो।

२. दिग्व्रत किसे कहते हैं। दिग्वत तथा देशव्रत में क्या भेद है ? वताओ देशव्रत धारी अपनी मर्यादा के वाहर किसी दूसरे मनुष्य को भिजवाकर अपना कार्य कर सकता है या नहीं और क्यों
३. अनर्थदण्डव्रत किसे कहते हैं ? वे कौन से अनर्थ हैं जो इस व्रत के धारी के लिए त्यागने योग्य हैं ? अनर्थ दण्डव्रती अपना चूहेदान अपने परिवार के मनुष्यों को मांगने से देगा या नहीं ? उत्तर कारण सहित लिखो ?
४. वताओ कोई मनुष्य विना अणुव्रत के धारण किये गुणव्रत धारण कर सकता है या नहीं ? और गुणव्रत का धारी अणुव्रती है या नहीं ? कारण सहित उत्तर दो ?

पाठ १४ श्रावक के चार शिक्षाव्रत

शिक्षाव्रत उसे कहते हैं जिनके धारण करने से मुनि व्रत पालन करने की शिक्षा मिले।

शिक्षाव्रत चार हैं—१. सामायिक २. प्रोषधोपवास ३. भोगोपभोग परिमाण, ४ अतिथि संविभाग।

१. सामयिक शिक्षा—समस्त पाप क्रियाओं को त्याग तथा सव पदार्थों से राग द्वेष छोड़ कर समता भावों के साथ नियत समय तक आत्म ध्यान करने का नाम सामायिक है।

सामायिक करने की विधि—सामायिक करने वाले को चाहिए कि शान्त एकान्त स्थान में जाकर किसी प्रासुक शिला या भूमि पर पट्टी आदि विछाकर पूर्व

या उत्तर को ओर मुख करके खडा होवे और दोनों हाथ जोड़कर मस्तक से लगाकर तीन बार शिरोनति करना [मस्तक झुका कर नमोस्तु करना] ॐ नमः सिद्धेभ्यः ॐ नमः सिद्धेभ्यः इस मन्त्र का उच्चारण करना चाहिए। फिर सीधे खड़े होकर दोनों हाथ सीधे छोड़ देने चाहिएँ। फिर पांव की एड़िया मे चार अंगुल का और सामने का अंगूठों मे बारह अंगुल का अन्तर रहे, इसी प्रकार मस्तक को भी रखना और नासाग्रदृष्टि रखना चाहिए। और नौ बार णमोकार मन्त्र का जाप करना चाहिए। इसके बाद उसी प्रकार उत्तर या पूर्व मे दोनों घुटने पृथ्वी पर लगाकर और दोनों हाथ जोड़कर मस्तक से लगाकर और मस्तक भूमि में लगाकर अष्टांग नमस्कार करना चाहिए। फिर खड़े होकर काल आदि का प्रमाण कर लेना चाहिए कि मैं छः घडी, चार घडी या दो घडी या अमुक समय तक सामायिक करूंगा। उस काल तक जो परिग्रह शरीर पर है उतना ही ग्रहण है। इत्यादि परिग्रह तथा काल क्षेत्रादि सम्बन्धी ग्रहण करना चाहिए। पश्चात् उसी दिशा मे [दिगम्बर सीधे दोनों हाथ जोड़ पहले की तरह खड़े होकर नौ या तीन बार णमोकार मन्त्र का जाप कर दोनों हाथ जोड़कर तीन

आवर्त करे अर्थात् दोनों हाथों को अंगुली बनाकर बांई ओर से दहिनी ओर को ले जाते हुए तीन चक्कर करे और फिर उस अंजुली को मस्तक से लगाकर मस्तक को झुकाना चाहिए, शेष तीन दिशाओं में भी प्रत्येक में तीन मन्त्र जपकर तोन आवर्त्त और एक शिरोनति करना चाहिए। इस प्रकार चारों दिशाओं में भी सब मिलकर बारह मन्त्रों का जाप, बारह आवर्त्त और चार शिरोनति हो जावेंगी पश्चात जिस दिशा में पहले खड़े होकर नमस्कार किया था, उसी दिशा में चाहे तो मूर्तिवत् स्थिर खड़े रह कर, अथवा पद्मासन या अर्द्ध पद्मासन से स्थिर बैठ सामायिक पाठ पढ़ें, णमोकार मन्त्र का जाप दे, भगवत् की शान्तिमय प्रतिमा तथा अपने आत्मस्वरूप का विचार करें। दश-लक्षणी धर्म तथा बारह भावना का चिन्तवन करे इस व्रतधारी श्रावक को चाहिए कि वह सामायिक के काल में अपने मन, वचन, काय को इधर उधर चलायमान न होने दे। सामायिक को उत्साह के साथ करे। और सामायिक की विधि और पाठ को चित्त की चंचलता से भूल न जावे। सामायिक का काल समाप्त होने पर खड़े होकर पहले की तरह नौ बार णमोकार मन्त्र को जाप उसी दिशा में फिर अष्टांग नमस्कार करे। सामा-

यिक प्रतिमा का धारी प्रातःकाल, दोपहर और सन्ध्या काल में नित्य प्रति सामायिक नियम रूप से किया करता है।

नोट–अध्यापक को चाहिए कि सामायिक की विधि आवर्त, शिरोनति, अष्टांग नमस्कारादि करके छात्रों को भली भांति समझा देव।

२. प्रोषधोपवास शिक्षाव्रत प्रत्येक अष्टमी और चतुर्दशी को समस्त आरम्भ तथा विषय कषाय और सर्व प्रकार के आहार का त्याग करके १६ प्रहर तक धर्म ध्यान करना प्रोषधोपवास कहलाता है। एक बार भोजन करना 'प्रोषध' कहलाता है। और सर्वथा भोजन नहीं करना 'उपवास' कहलाता है। दो प्रोषधों के बीच में एक उपवास करना 'प्रोषधोपवास' है, जैसे किसी पुरुष को अष्टमी का प्रोषधोपवास करना है तो सप्तमी और नवमी को एक बार भोजन करे, और अष्टमी को भोजन का सर्वथा त्याग करे। उसे चाहिए कि प्रोषधोपवास के दिन पांच पापों का, गृहस्थ के व्यापार का तथा शृङ्गार, इतर, तेल, फुलेल, साबुन अंजन, मंजन आदि का और ताश, चौसर, शतरंज आदि खेलने का सर्वथा त्याग करे और १६ पहर तक अपना समय पूजन, स्वाध्याय, सामायिक तथा धर्म-चर्चा

८. नृत्य करूँगा व देखूँगा या नहीं ।

९. ब्रह्मचर्य पालूँगा या नहीं ।

१०. स्नान कै बार करूँगा ।

११. वस्त्र—कपड़े कितने काम में लूँगा ।

१२. आभूषण—जेवर कौन कौन से पहनूँगा ।

१३. आसन—बैठने के आसन कौन २ से रखूँगा

१४. शय्या—सोने के आसन कौन २ से रखूँगा।

१५. वाहन—सवारी कौन २ सी रखूँगा या नहीं

१६. सचित वस्तु-हरी सब्जी कौन २ सी खाऊँगा

१७. वस्तु संख्या-कितनी सब वस्तुएँ खाऊँगा या छोड़ूँगा ।

४ अतिथि संविभागव्रत—फल की इच्छा के बिना भक्ति और आदर के साथ धर्म बुद्धि से मुनि, त्यागी तथा अन्य धर्मात्मा पुरुषों को आहार, औषधि, ज्ञान और अभय चार प्रकार का दान देना अतिथि संविभागव्रत कहलाता है । जो भिक्षा के लिए भ्रमण करते हैं, ऐसे साधुओं को अतिथि कहते हैं । अपने कुटुम्ब के लिए बनाये हुए भोजन में से भाग करके देना संविभाग है ।

यदि मुनि, त्यागी आदि दान के पात्र न मिलें तो किसी भी सहधर्मी भाई को आदर-पूर्वक दान देवें

अथवा करुणा बुद्धि से दीन-दुःखी, अपाहिज भिखारियों को भोजन, वस्त्र, औषधि आदि यथाशक्ति दान देवें। श्रावकों को उचित है कि भोजन करने से पहले कुछ न कुछ दान अवश्य ही करें। यदि और कोई दान न बन सके तो अपने भोजन में से कम से कम एक दो रोटी निकाल कर दुखित भूखे मनुष्यों को तथा पशुओं को दे दें। किसी का आदर सत्कार, विनय करना, योग्य स्थान देना, कुशल पूछना, मीठेवचन बोलना, एक प्रकार का बड़ा दान है। दान नाम त्याग का भी है। खोटे भाव, पर निन्दा, चुगली, विकथा तथा कषायों और अन्याय के धन का त्याग करना ही महादान है। बड़ के बीज की तरह भक्ति सहित पात्र को दिया हुआ थोड़ा भी दान महान फल को देता है, दानी को इस लोक में यश और परलोक में परम सुख की प्राप्ति होती है। दानी के शत्रु भी मित्र हो जाते हैं। इस धन के धारी को चाहिये कि क्रोधित होकर अनादर से दान न देवें। दान देकर दुःखी न हो, हर्ष-भाव के साथ दान देवें, दान देकर गर्व न करे तथा दान से फल की इच्छा न करे।

प्रश्नावली

१. शिक्षाव्रत किसे कहते हैं और वे कितने होते हैं ?

२. सामायिक किस प्रकार करनी चाहिये, पूरी तरह बताओ ?

३. नीचे लिखे हुओं में क्या अन्तर है ?
उपवास, प्रोषधोपवास, भोग और उपभोग, यम और नियम।

४. भोगोपभोग परिणामव्रत किसे कहते हैं तथा इस व्रतधारी के लिए विचारने योग्य कम से कम १० नियम लिखो और दस भोग और दस उपभोग वस्तुओं के नाम लिखो ?

५. शिक्षाव्रत के अन्तिम भेद का लक्षण लिखकर बताओ कि तुम अतिथि से क्या समझते हो ?

६. संविभाग का क्या अभिप्राय है और दान का क्या महत्व है ?

पाठ १५ महावीर स्तुति

धन्य तुम महावीर भगवान्

लिया पुण्य अवतार, जगत का करने को कल्याण ।धन्य।
बिलबिलाट करते पशुकुल को, देख दयालय प्राण ।
परम अहिंसामय सुधर्म की, डाली नींव महान् ।धन्य।२
ऊँच नीच के भेद-भाव का, बढ़ा देख परिणाम ।
सिखलाया सबको स्वाभाविक, समता तत्त्व महान ।धन्य
मिला समवसृत में सुरनर-पशु, सबको सम सम्मान ।
समता और उदारता का यह, कैसा सुगम विधान ।धन्य
अन्धी श्रद्धा का ही जग में, देख राज्य बलवान् ।
कहा 'न मानो बिना युक्ति के, कोई वचन प्रमाण' धन्य

१. इस कविता में किसकी स्तुति की गई ?
२. भगवान महावीर के उपदेशों को एक संक्षिप्त निबन्ध में लिखो

पाठ १६ भगवान् पार्श्वनाथ

भगवान महावीर चौबीस तीर्थंकरों में से अन्तिम तीर्थंकर थे। इनसे पहले तेईसवें तीर्थंकर श्री पार्श्वनाथ जी हुए हैं। उनका बालजीवन सत्य धर्म का पाठ सिखाने के लिए अनुपम है।

तीर्थंकर उस मनुष्य को कहते हैं जिसने इन्द्रियों और मन को जीत कर सर्वज्ञ पद पा लिया हो। ज्ञान के द्वारा जो सब ही भटकते हुए जीवों को संसार रूपी महासागर से पार लगाने में सहायक हों। इस प्रकार सब ही तीर्थंकर लोक का सच्चा उपकार करने वाले महान शिक्षक थे। इनमें सबसे पहले ऋषभदेव हुए। उनके बाद बड़े बड़े लम्बे चौड़े समयों के बाद क्रमशः तेईस तीर्थंकर और हुए। इनमें चौबीसवें तीर्थंकर भगवान महावीर जी की बाबत बालको! तुम पहले ही पढ़ चुके हो।

श्री महावीर स्वामी के निर्वाण से ढाई सौ वर्ष पहले श्री पार्श्वनाथजी निर्वाण पधारे। इनके पिता

राजा विश्वसेन बनारस में राज्य करते थे। इनकी माता महिपाल नगर के राजा की पुत्री थी। उनका नाम वामादेवी था। राजकुमार पार्श्वनाथ बड़े पुण्य-शाली जीव थे। वह बचपन से ही गहन ज्ञान की बातें करते थे। लोग उनके चातुर्य को देखकर दंग रह जाते थे।

एक दिन राजकुमार पार्श्वनाथ वन-विहार के लिए निकले। सखा-साथी उनके साथ थे। घूमते-फिरते वे क पेड़ के पास से निकले, जिस पर एक संन्यासी उल्टा लटक पंचाग्नि तप कर रहा था। यह उनके नाना थे। राजकुमार उनकी मूढ़ क्रिया को देख कर हँसे और साथियों से बोले देखो, इस मूढ़ संन्यासी को! यह जीवहत्या करके स्वर्ग के सुखों की अभि-लाषा कर रहा है, जिस लक्कड़ को इसने सुलगा रखा है, उसमें नाग नागिनी हैं, यह भी इसको पता नहीं है।

संन्यासी इस बात को सुनकर आग बबूला हो गया और बोला—'हां हां तू बड़ा ज्ञानी है। छोटे मुँह बड़ी बातें कहते हुए तुझे डर भी नहीं लगता, तिस पर भी तेरा नाना और संन्यासी। इस मेरी तपस्या को तू हत्या का काम बताता है।'

राजकुमार पार्श्वनाथ ने संन्यासी की इन बातों का बुरा न माना, बल्कि उन्होंने उत्तर में कहा—साधु होकर क्रोध क्यों करते हो? बुद्धि उम्र के साथ नहीं बिकी है। ज्ञान बिना कोई भी करनी काम की नहीं। तुम्हें अपनी तपस्या का बड़ा घमण्ड है तो जरा इस लक्कड़ को फाड़ कर देखो। दो निरपराध जीवों के प्राण जायेंगे। क्या यही धर्म-कर्म है, संन्यासी बोला तो कुछ नहीं, पर लक्कड़ चीरने पर जुट पड़ा। उसने देखा सचमुच उस लक्कड़ के भीतर साँपों का एक जोड़ा है। वह दंग रह रहा, परन्तु अपने बड़प्पन की डींग मारता ही रहा। वे युगल नाग शस्त्र से घायल हो गये, परन्तु उनके परिणामों में भगवान् पार्श्वनाथ के वचनों ने शान्ति उत्पन्न करदी थी, वे समताभाव से मर कर धरणेन्द्र पद्मावती पैदा हुए। एक बार अयोध्या से एक दूत राजा विश्वसेन की सभा में आया। पार्श्वनाथ ने अयोध्या का हाल पूछा तो उसने ऋषभ आदि तीर्थंकरों का चरित्र सुनाया, सुनते ही प्रभु को ध्यान आया और वे वैराग्यवान् हो गये। बिना विवाह कराये ही तीस वर्ष की अवस्था में साधु होकर वे तो और घोर तप करने लगे।

एक बार कमठ के जीव पूर्व जन्म के बैरी देव ने

घोर उपद्रव किया। वृष्टि की, ओले बरसाये, सर्प लिपटाये, परन्तु भगवान सुमेरु पर्वतवत् ध्यान में स्थिर रहे। युगल नाग के जीवों में से धरणेन्द्र ने सर्प के रूप में छाया की, पद्मावती ने मस्तक पर उठा लिया, उपसर्ग दूर हुआ। भगवान को केवल ज्ञान हुआ। केवलज्ञान होने के बाद भगवान ने विहार करके धर्मोपदेश दिया। अनेक जीवों का उपकार किया। सौ बरस की आयु में हजारी बाग जिले के सम्मेद शिखर पर्वत से मोक्ष पधारे। इसी कारण इस पर्वत को आजकल पार्श्वनाथ हिल [पहाड़] कहते हैं।

प्रश्नावली

१. तीर्थंकर किसे कहते हैं? बताओ भगवान पार्श्वनाथ कौन से तीर्थंकर थे?
२. संन्यासी कौन था? और वह क्या कर रहा था? भगवान पार्श्वनाथ को किस प्रकार ज्ञात हो गया कि लक्कड़ में नाग और नागिन हैं?
३. भगवान पार्श्वनाथ को वैराग्य क्यों हो गया था? कमठ कौन था और उसने क्या उपद्रव किया और वह उपद्रव किस प्रकार दूर हुआ?
४. क्या कारण था जो नाग और नागिनी घायल होकर मरने पर भी धरणेन्द्र और पद्मावती हो गए?
५. भगवान पार्श्वनाथ कहां से मोक्ष गये थे और उस स्थान का क्या नाम पड़ गया है?

पाठ १७ सती अँजना सुन्दरी

सती अंजना सुन्दरी महेन्द्रपुर के राजा महेन्द्र व रानी हृदयवेगा की परम प्यारी पुत्री थी। बालकपन में ही वह सब विद्याओं और कलाओं में निपुण हो गई थी। इसको धर्मशास्त्र की शिक्षा भी पूर्ण रूप से दी गई थी। युवती होने पर माता पिता ने उसका सम्बन्ध आदित्यपुर के राजा प्रहलाद, रानी केतुमती के पुत्र पवनकुमार के साथ निश्चय कर दिया।

पवनकुमार ने अंजना के रूप, गुण और शिक्षा की बड़ी प्रशंसा सुनी उससे मिलने की इच्छा से वे एक रात्रि को अपने मित्र के साथ विमान द्वारा महेन्द्रपुर को रवाना हुए। जिस समय वे महेन्द्रपुर पहुँचे, अंजना सुन्दरी अपने महल के ऊपर सखियों के साथ बैठी हुई अपना मनोरंजन कर रही थी। पवनकुमार छिपकर उसकी गुप्त वार्ता सुनने लगे। वे सब सखियां अंजना के सम्बन्ध पर अपना-अपना विचार प्रगट कर रही थीं। अभाग्य से उसकी एक मूर्ख सखी ने पवनकुमार के सम्बन्ध पर कुछ असन्तोष प्रगट किया। अंजना लज्जावश चुप रही। पवनकुमार अपना अपमान समझ बड़े दुखी हुए। उनको अंजना से अरुचि हो गई।

सीधे ही मित्र सहित अपने स्थान को लौट आये और अंजना के साथ विवाह न करने की दिल में ठान ली। यह सब समाचार किसी को मालूम न हुए।

इधर दोनों राजाओं ने विवाह की तिथि निश्चित कर ली। विवाह की सब तैयारियाँ होने लगीं। पवन-कुमार ने विवाह न करने की बहुतेरी हठ की, परन्तु माता-पिता के आगे उनकी एक न चली। नियत तिथि पर उनका विवाह हो गया। यद्यपि पवनकुमार ने अपने माता-पिता के कहने से अंजना से विवाह कर लिया, परन्तु उनका चित्त उसके विरुद्ध ही रहा। अंजना जब उनके महल में गई तो उसे रूठ जाने का हाल मालूम हुआ। उसे बड़ा दुःख हुआ। दिन रात वह उनको प्रसन्न करने के लिए अनेक प्रयत्न करती थी, परन्तु उनका भ्रम दूर नहीं हुआ। पवनकुमार ने अंजना की ओर कभी प्रेम से नहीं देखा। इस प्रकार परम सती को उनका नाम रटते-रटते २२ वर्ष हो गये। चिन्ता के कारण उसका शरीर सूख कर पिंजर हो गया।

एक दिन जिस समय पवनकुमार अपने पिता की आज्ञानुसार लंका के राजा रावण को राजा वरुण के युद्ध में सहायता देने के लिए जाने को तैयार हुए, तो उन्होंने साक्षात् प्रेम की मूर्ति अंजना को दरवाजे प

ति दर्शन के लिए खड़े हुए देखा। कुमार ने उसकी
विनय पर कुछ ध्यान न दिया, किन्तु अपमान भरे
शब्दों से उसका और भी तिरस्कार कर दिया और
अपनी सेना लेकर युद्ध के लिए चलते बने। सुन्दरी के
हृदय पर दुःख का पहाड़ टूट पड़ा इस समय उसे
परमात्मा के ध्यान के सिवाय और कोई सहारा न
रहा।

चलते-चलते पवनकुमार मानसरोवर पर पहुँचे
वहां उन्होंने अपना डेरा डाल दिया। रात्रि के समय
जब टहल रहे थे, तो उन्होंने चकवी को चकवे के
वियोग में रुदन करते हुए सुना। रुदन सुनकर विचा-
रने लगे। देखो ! इस चकवी को अपने प्रिय का एक
रात्रि का वियोग होने से इस समय इतना कष्ट हो
रहा है तो अंजना को २२ वर्ष के वियोग से न जाने
कितना कष्ट हुआ होगा। प्रेम के अश्रु कुमार की
आँखों से गिरने लगे, तुरन्त ही गुप्त रीति से अपने
मित्र सहित उसी रात्रि को विमान में बैठकर चुपके-
चुपके अंजना सुन्दरी के महल में पहुंचे। अंजना
कुमार को देखकर फूली न समाई। पति को अनेक
प्रकार से विनय और स्वागत करने लगी। कुमार ने
अपने अपराधों की क्षमा मांगी। सारी रात महल में
अंजना सुन्दरी के साथ बिताई।

प्रश्नावली

१. अंजना कौन थी ? और किसकी पुत्री थी तथा इसका विवाह किसके साथ हुआ था ?
२. पवनकुमार अंजना से क्यों अप्रसन्न हो गये थे ? तथा उनको यह अप्रसन्नता कब तक बनी रही ?
३. पति की रुष्टावस्था में अंजना ने क्या किया और उसकी क्या हालत हुई ?
४. पवनकुमार मानसरोवर क्यों गये थे ? तथा किस प्रकार उनको अपनी २२ वर्ष की छोड़ी हुई पत्नी की सुध आ गई ?
५. सास ने अंजना को क्या कलंक लगाया तथा उसे कहाँ भिजवा दिया ? वन में अंजना ने क्या-क्या कष्ट उठाये तथा किस प्रकार अंजना मामा के घर पहुंची।
६. बताओ फिर किस प्रकार अंजना और पवनकुमार का संयोग हुआ ?
७. अंजना को अपने पति से २२ वर्ष का लम्बा वियोग क्यों सहना पड़ा था ?
८. अंजना की कहानी से तुम्हें क्या शिक्षा मिलती है ?

पाठ १८ तत्व और पदार्थ

जिनके जानने से हमें अपने आत्मा के सच्चे हित का ज्ञान हो सके, हम अपने आत्मा को पवित्र कर सकें उन बातों को, या वस्तु के स्वभाव को "तत्त्व" कहते हैं। जिसमें तत्त्व पाया जावे उसी को "पदार्थ" कहते हैं। आत्मा की उन्नति को समझने के लिये सात तत्वों को जानना आवश्यक है। वे सात तत्त्व ये हैं—

(१) जीव (२) अजीव (३) आस्त्रव (४) बन्ध (५) संवर (६) निर्जरा (७) मोक्ष।

१. जीव—उसे कहते हैं जिसमें चेतना अर्थात् देखने जानने की शक्ति पाई जावे। जीव प्राणों से जीते हैं। प्राण दो प्रकार के होते हैं भावप्राण और द्रव्यप्राण।

भावप्राण—ज्ञान और दर्शन, सुख, वीर्यादि आत्मा के गुण हैं।

द्रव्यप्राण—दस होते हैं।

५ इन्द्रियाँ—स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु, कर्ण।

६ बल—मनोबल, वचनबल, कायबल।

२ आयु और श्वासोच्छ्वास।

नोट—मुक्त जीवों में केवल भावप्राण ज्ञान और दर्शन, सुख, वीर्य आदि ही पूर्ण रूप से पाये जाते हैं, पर संसारी जीवों में किन्हीं अंशों में ज्ञान दर्शन होते हुए भी द्रव्यप्राण भी पाये जाते हैं।

२. अजीव—उसे कहते हैं जिसमें चेतना न पाई जावे। अजीव के पांच भेद हैं—

पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल, [इनका स्वरूप तीसरे पाठ में बताया जा चुका है]।

३. आस्रव—रागद्वेष आदि भावों के कारण पुद्-गल कर्मों का खिचकर आत्मा की ओर आना आस्रव है। जैसे किसी नाव में छेद हो जाने पर पानी आने लगता है, वैसे ही आत्मा के शुभ अशुभ रूप भाव होने पर पुद्गल कर्म खिचकर आत्मा की ओर जाते हैं।

१. मिथ्यात्व, २. अविरति, ३. कषाय और ४. योग ही आस्रव के मुख्य कारण हैं।

मिथ्यात्व—राग द्वेष रहित अपनी शुद्ध परम पवित्र आत्मा के अनुभवों में श्रद्धान करने का नाम सम्यक्तत्व है। सम्यक्त्व आत्मा का निज भाव है। इस सम्यक्त्व के विपरीत अर्थात् उल्टे भाव को ही मिथ्या कहते हैं। इस मिथ्यात्व भाव के कारण संसारी जीवों के नेक संकल्प हुआ करते हैं। मिथ्यात्व ही जीव के शान्ति स्वभाव का नाश करता है और इसी से यह जीव के कर्म का कारण है। मिथ्यात्व पांच प्रकार के हैं—एकान्त मिथ्यात्व, विपरीत मिथ्यात्व, विनय मिथ्यात्व, संशय मिथ्यात्व और अज्ञान मिथ्यात्व।

अविरति—आत्मा का अपने शुद्ध चिदानन्दमय स्वभाव से विमुख होकर बाहरी विषयों में लवलीन होना अविरति है। पांचों इन्द्रियों और मन को वश में नहीं रखना और छः काय के जीवों की रक्षा न करके

उनको हिंसा करना अविरति है। अविरति बारह प्रकार की है।

कषाय—जो आत्मा को कषे अर्थात् दुःख दे, वह कषाय है। जैसे क्रोध, मान, माया, लोभ, हास्य, शोकादि ये कषाय पच्चीस होती हैं।

अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ 'चार' ४
अप्रत्याख्यान क्रोध, मान, माया, लोभ, 'चार' ४
संज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभ, 'चार' ४

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८
हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा स्त्रीवेद, पुरुष-
९
वेद, नपुंसकवेद, 'कषाय' इस प्रकार १६ कषाय और नो कषाय मिलकर कषाय के कुल पच्चीस भेद होते हैं।

योग—मन, वचन, काय की क्रिया द्वारा आत्मा में हलन चलन होना योग कहलाता है। आत्मा में हलन चलन होने से कर्मों का आस्रव होता है। योग के मन, वचन, काय रूप मुख्य तीन भेद हैं। इसके विशेष भेद १५ होते हैं। ४ मनोयोग, ४ वचन योग, और ७ काय योग।

१. सत्य मनोयोग, २. असत्य मनोयोग, ३. उभय

मनोयोग, ४. अनुभय मनोयोग, ५. सत्य वचनयोग, ६. असत्य वचनयोग, ७. उभय वचनयोग, ८. अनुभय वचनयोग, ९. औदारिक काययोग, १० औदारिक मिश्र काययोग, ११. वैक्रियक काययोग, १२. वैक्रियक मिश्र काययोग, १३. आहारक काययोग, १४. आहारक मिश्र काययोग, १५. कर्माण योग।

नोट—इस प्रकार ५ मित्यात्व, १२ अविरति, २५ कषाय और १५ योग, ये कुल मिलाकर आस्रव के ५७ भेद होते हैं।

४. बन्धतत्व—राग द्वेष के निमित्त से आये हुए शुभ अशुभ पुद्गल कर्मों का आत्मा के साथ जल और दूध की तरह मिलकर एक हो जाना तत्व है। जैसे नाव में छेद के द्वारा पानी आकर नाव में इकट्ठा हो जाता है, वैसे ही कर्म आकर आत्मा के साथ बंध जाते हैं। बंध के भी दो भेद हैं। भाव बंध और द्रव्य बंध। आत्मा के जिन विकार परिणामों से कर्म बन्ध होता है, उन विकार परिणामों का भाव बन्ध कहते हैं। और उस विकार भाव से जो पुद्गल कर्म परमाणु आत्मा के साथ दूध और पानी की तरह एक मेल होकर मिलते हैं उसे द्रव्य बन्ध कहते हैं। बन्ध और आस्रव साथ-साथ एक ही समय होते हैं। आस्रव कारण है, बन्ध

कारण है। इसलिए जितने आस्रव हैं वे सब ही बन्ध के कारण हैं। बन्ध चार प्रकार का होता है—

१. प्रकृति बन्ध, २. प्रदेश बन्ध ३. स्थिति बन्ध ४. अनुभाग बन्ध।

५. संवरतत्व—आस्रव का न होना अर्थात् आते हुए कर्मों को रोक देना संवर है। जैसे जिस छेद से नाव में पानी आता है उस छेद में डाट लगाकर पानी को आने से रोक दिया जाता है।

संवर के भी दो भेद हैं, भाव संवर, द्रव्य संवर।

भाव संवर जिन परिणामों से कर्मों का आना रुकता है वे भाव संवर कहलाते हैं और उन्हीं के रोकने से पुद्गल परमाणुओं का कर्मरूप होकर आत्मा की ओर न आना द्रव्य संवर है।

संवर बारह भावनाओं के भाने, दश धर्मों का पालन करने और परीषह अर्थात् भिन्न २ प्रकार के कष्ट समता भाव से झेलने आदि से होता है।

संवर के मुख्य कारण ३ गुप्ति, १२ अनुप्रेक्षा 'भावना', ५ व्रत, ५ समिति, १० धर्म, २२ परिषहजय और ५ —

च. व्रत—निश्चय में राग-द्वेषादिक विकल्पों से रहित होने का नाम व्रत है। व्यवहार में अहिंसा, सत्य अचौर्य, ब्रह्मचर्य और परिग्रह यह पांच व्रत कहलाते हैं। इनका वर्णन पहले पढ़ चुके हो।

छ. समिति—अपने शरीर से दूसरे जीवों को पीड़ा न होने की इच्छा से यत्नाचार रूप प्रवृत्ति करना समिति कहलाता है।

ईर्या, भाषा, एषणा, आदाननिक्षेपण और उत्सर्ग ये पांच समिति हैं।

इनका वर्णन पहले पाठ १६ साधु परमेष्ठी में पढ़ चुके हो?

ज. गुप्ति—मन, वचन और काय के व्यापार का वश में करना, काबू में लाना व रोकना गुप्ति है। गुप्ति तीन होती हैं।

(१) मनोगुप्ति, (२) वचनगुप्ति, (३) कायगुप्ति
[देखो पाठ १४ आचार्य परमेष्ठी]

झ. दश धर्म—(१) उत्तम क्षमा (२) उत्तम मार्दव (३) उत्तम आर्जव (४) उत्तम सत्य (५) उत्तम शौच (६) उत्तम संयम (७) उत्तम तप (८) उत्तम त्याग (९) उत्तम आकिंचन्य और (१०) उत्तम ब्रह्मचर्य यह दश धर्म हैं।

८. अनुप्रेक्षा—बारम्बार विचार करने को अनु-
क्षा या भावना कहते हैं। ये भावनायें बारह होती
। इन्हें ही बारह भावना कहा करते हैं।

१. अनित्य, २. अशरण, ३ संसार, ४. एकत्व,
५. अन्यत्व, ६. अशुचि, ७. आस्रव, ८. संवर, ६.
निर्जरा, १०. लोक, ११. बोधि दुर्लभ, २ धर्म।

१ अनित्य भावना—ऐसा विचार करना कि धन-
धान्यादि जगत् को सब वस्तुऐं विनाशीक हैं इनमे से
कोई भी नित्य नहीं है।

२ अशरण भावना ऐसा विचार करना कि
जगत् में जीव का कोई शरण नहीं है। कोई किसी को
मरने से बचाने वाला नहीं है।

३ संसार भावना—ऐसा चिन्तवन करना कि यह
संसार अपार है और संसार में कहीं भी सुख नहीं है।

४ एकत्व भावना—ऐसा विचार करना कि यह
दा अकेला ही है, अपने कर्मों के फल को अकेला आप
ी भोगता है।

५ अन्यत्व भावना—ऐसा विचार करना कि
ीर जुदा है और मैं जुदा हूँ। जब यह शरीर ही

अपना नहीं है तो फिर संसार का कोई भी पदार्थ मेरा अपना कैसे हो सकता है ?

६ अशुचि भावना—ऐसा विचारना कि यह शरीर अत्यन्त अपवित्र और घिनावना है। इसलिए यह ममत्व करने योग्य नहीं है।

७ आस्रव भावना—यह विचारना कि आस्रव से यह जीव संसार में रुलता है, इसलिए जो आस्रव के कारण हैं उनका विचार करके उनसे बचने का ही उपाय करना चाहिए।

८ संवर भावना - ऐसा विचार करना कि संवर से ही अर्थात् आस्रव के रोकने से ही यह जीव संसार से पार हो सकता है और इसलिए संवर के कारणों का विचार करके उनको ग्रहण करना चाहिये।

६ निर्जरा भावना—ऐसा विचार करना कि कर्मों का कुछ झड़ जाना या एक देश क्षय होना, दूर होना निर्जरा है इसलिए निर्जरा के कारणों को जानकर जिस-तिस प्रकार बंधे हुए कर्मों को दूर करना चाहिये।

१० लोक भावना—ऊर्द्ध लोक, मध्यलोक पाताल-लोक इन तीनों लोकों के स्वरूप का चिन्तवन करना कि

लोक कितना बड़ा है, उसमें क्या-क्या स्थान हैं और किस-किस स्थान में क्या २ रचना है, और वहाँ क्या क्या होता है ऐसा विचार करना लोक भावना है। इस भावना से संसार परिभ्रमण की दशा मालूम होती है और संसार से छूटने और मोक्ष प्राप्ति की अभिलाषा होती है।

११ बोधि दुर्लभ भावना - ऐसा विचार करना कि यह मनुष्य देह बड़ी कठिनाई से प्राप्त होती है। ऐसे अमोलक मनुष्य जन्म को पाकर वृथा ही नहीं खोना चाहिए, किन्तु सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान सम्यक्-चारित्र रूप रत्नत्रय धर्म को पालन कर अपना जन्म सफल करना चाहिए।

१२ धर्म भावना—धर्म के स्वरूप का चिन्तवन करना तथा धर्म ही इस लोक और परलोक के सुखों को देने वाला है और धर्म ही दुःख से छुड़ाकर मोक्ष के श्रेष्ठ सुख का देने वाला है। ऐसा विचार करना धर्म भावना है।

८. परीषहजय—मुनि महाराज कर्मों की निर्जरा और काय क्लेश करने के लिए जो परीषह अर्थात् पीड़ा समता भावों से स्वयं सहन करते हैं। उनको परीषहजय कहते हैं। परीषह बाईस हैं।

१. क्षुधा २. तृषा ३. शीत ४. उष्ण ५. दंश मशक ६. नग्न ७. अरति ८. स्त्री ९. चर्या १०. आसन ११. शय्या १२. आक्रोश १३. वन १४. याचना १५. अलाभ १६. रोग १७. तृणस्पर्श १८. मल १९. सत्कार पुरस्कार २०. प्रज्ञा २१. अज्ञान २२. अदर्शन।

१ क्षुधा परीषहजय भूख-प्यास की तीव्र वेदना होने पर उसके वश न होकर दुःख सह लेने को कहते हैं।

२ तृषा परीषहजय—प्यास की तीव्र वेदना होने पर उसके वश न होकर दुःख सह लेने को कहते हैं।

३ शीत परीषहजय—शीत अर्थात् जाड़े के कष्ट को सहन करने को कहते हैं।

४ उष्णपरीषहजय—उष्णता अर्थात् गर्मी के संताप सहने को कहते हैं।

५ दंशमशक परीषहजय—डांस, मच्छर, बिच्छू, कानखजूरे आदि जीवों के काटने की वेदना को सहन करने को कहते हैं।

६ नग्न परीषहजय—किसी प्रकार के भी वस्त्र न धारण कर नग्न रहने की ओर लज्जा, ग्लानि तथा किसी प्रकार के भी विकारों को न होने देने को कहते हैं।

७ अरति परीषहजय—संसार के इष्ट अनिष्ट पदार्थों में राग द्वेष न कर समता भाव धारण करने को कहते हैं।

८ स्त्री परीषहजय—किसी प्रकार की सवारी की इच्छा न करके मार्ग के कष्ट को न गिनकर भूमि शोधन करते हुए गमन करने को कहते हैं।

९ चर्या परीषहजय—किसी प्रकार की सवारी की इच्छा न करके मार्ग के कष्ट को न गिनकर भूमि शोधन करते हुए गमन करने को कहते हैं।

१० आसन परीषहजय—देर तक एक ही आसन से बैठे रहने का दुःख सहन करने को कहते हैं।

११ शय्या परीषहजय—कंकड़ों, पथरीलों, कांटों से भरी हुई भूमि में शयन करके दुःखी न होने को कहते हैं।

१२ आक्रोश परीषहजय—दुष्ट मनुष्यों द्वारा कुवचन कहे जाने पर तथा गालियां दिये जाने पर भी किंचित्मात्र भी क्रोधित न होकर उत्तम क्षमा धारण करने को कहते हैं।

१३ वध परीषहजय—दुष्ट मनुष्यों द्वारा वध बन्धनादि दुःख दिये जाने पर समता भाव करने को कहते हैं।

जैसे नाव में छिद्र के द्वारा आकर जो पानी भर गया था उसको थोड़ा २ करके बाहर निकाल दिया जावे वैसे ही आत्मा के साथ बंधे हुए कर्मों को धीरे-धीरे तपश्चरण द्वारा आत्मा से जुदा कर दिया जाता है। आत्मा के जिस परिणाम से पुद्गल कर्म फल देकर नष्ट हो जाते हैं, वह भाव निर्जरा है। समय पाकर या तपश्चरण द्वारा कर्म-रूप पुद्गल का आत्मा से झड़ना 'द्रव्य निर्जरा' है।

फल देकर अपने समय पर कर्म का आत्मा से जुदा होना 'सविपाक निर्जरा' है।

७. मोक्ष तत्व—सब कर्मों का नष्ट होकर आत्मा के शुद्ध होने का नाम मोक्ष है।

जैसे नाव के अन्दर भरा हुआ सब पानी बिल्कुल निकाल कर नाव को साफ कर दिया जाता है, वैसे ही सब कर्मों के सर्वथा रहित होने पर आत्मा शुद्ध परमात्मा स्वरूप होता है। आत्मा का शुद्ध परिणाम जो सर्व पुद्गल कर्मों के नाश का कारण होता है वह 'भाव मोक्ष' है। आत्मा से सर्वदा द्रव्य कर्मों का जो दूर होना है वह द्रव्य 'मोक्ष' है।

[पदार्थ]

इन ही ऊपर बताये हुए सात तत्वों में पुण्य और पाप मिलाने से ही नौ पदार्थ कहलाते हैं।

पुण्य—उसे कहते हैं जिसके उदय से जीवों को सुख देने वाली सामग्री मिले। जैसे किसी को व्यापार में खूब लाभ होना, घर में सुपुत्र का होना, उच्च पद का प्राप्त होना ये सब पुण्य के उदय से होते हैं।

परोपकार करना, दान देना, भगवान का पूजन करना, ज्ञान का प्रचार करना, धर्म का पालन करना आदि शुभ कार्यों से पुण्य का बन्ध होता है।

पाप—जिसके उदय से जीवों को दुख देने वाली चीजें मिलें। जैसे रोगी हो जाना, पुत्र का मर जाना, धन चोरी चला जाना इत्यादि यह सब पाप के उदय से होते हैं।

हिंसा करना, झूठ बोलना, चोरी करना, जुआ खेलना, दूसरों की निन्दा करना, दूसरों का बुरा चाहना आदि बुरे कार्यों से पाप का बन्ध होता है।

प्रश्नावली

१. द्रव्य किसे कहते हैं और कितने होते हैं ? नाम बताओ।
२. (क) आत्मा कितने प्रकार के होते हैं ? बताओ मुक्त जीवों के कौन

कौन से प्राण होते हैं और संसारी जीव के कौन-कौन से प्राण होते हैं ?

(आ) नीचे लिखों में से कितने और कौन-कौन से प्राण पाये जाते हैं।

स्त्री, देव, नारकी, कुर्सी, इंजन, चिड़िया, वृक्ष, चिवटी, मक्खी, लड़का, लट ?

३. बताओ सातों तत्वों में कौन-कौन से तत्व ग्रहण करने के योग्य और कौन से तत्व दूर करने के योग्य हैं ? मोक्ष, संवर, निर्जरा, आस्रव, इन तत्वों को क्रम वार लिखो और इसका स्वरूप दृष्टान्त सहित समझाओ ?

४. संक्षिप्ततया बताओ कि तीसरे तत्व के कितने और कौन से मुख्य कारण हैं ? मिथ्यात्व और अविरति के लक्षण लिखकर ५ योगों के नाम लिखो ?

५. बन्ध किसे कहते हैं ? और ये कितने प्रकार हैं ? बन्ध और आस्रव में क्या भेद है ?

६. [illegible] तत्व के मुख्य कारणों को लिखो। अनुप्रेक्षा व भावना में क्या भेद है ? निम्नलिखित के लक्षण लिखो—अन्यत्व भावना, [illegible], संसार भावना, बोधि भावना, धर्म भावना।

७. चारित्र किसे कहते हैं ? वे कितने होते हैं ? नाम लिखो।

८. कर्म कितने और कौन-कौन से होते हैं ? कौन-कौन से कार्य करने से पुण्य और किन से पाप का बन्ध होता है ?

९. [illegible] परिग्रह किसे कहते हैं ? परिग्रह कितने हैं और उसको कौन [illegible] करते हैं और क्यों ?

स्याद्वाद शैली से देखने पर कोई भी मत असत्य नहीं ठहरता। १०५

(ख) नीचे लिखी परीषहों का स्वरूप बताओ—
आक्रोश परीषह, याचना परीषह, अलाभ परीषह, सत्कार परीषह, तिरस्कार परीषह, चर्या परीषह।

१०. (क) नीचे लिखे साधुओं ने कौन सी परीषह सही ?
ऋषभदेव स्वामी को आहार के लिए जाने पर भी आहार न मिला, छह महीने तक बराबर अन्तराय रहा।

(ख) आनन्द स्वामी जब वन में ध्यानारूढ़ खड़े थे तो सिंह ने उनके शरीर को विदारा।

(ग) राजा श्रेणिक ने यशोधर स्वामी के गले में मरा हुआ साँप डाल दिया, उससे चिवटियाँ उनके शरीर पर चढ़ गई और उन्हें बड़ा कष्ट दिया।

(घ) श्री मानतुंगाचार्य को राजा भोज ने जेल में डलवा दिया ?

(ङ) सनत्कुमार मुनि को कुष्ट हो गया, बड़ी पीड़ा हुई—वैद्य मिलने पर भी उन्होंने इलाज की इच्छा प्रकट नहीं की।

(च) गुणमित्र मुनि वायुभूति को सम्बोधन के लिए उसके घर गये। वायुभूति ने उनको बहुत बुरा भला कहा—उन्होंने सब शान्ति से सहन कर लिया।

(छ) एक मुनि कड़ी धूप में खड़ा है, कई दिन से आहार नहीं लिया है, प्यास के मारे गला सूख रहा है, शरीर पर पसीने के कारण रेत जम गया है, आँख में कुछ गिर पड़ा है—कष्ट बिना खेद सहन कर रहे हैं ?

११. नीचे लिखे कामों से पुण्य होगा या पाप—[illegible] को [illegible] [illegible] देने से, लड़ने, [illegible], [illegible] [illegible] को रोटी खिलाने से, पुजारी द्वारा साधुओं को [illegible] दान देने से, देश-भक्ति में लड़ने, प्याऊ और [illegible] बनाने से, छोटी [illegible]

या बुढ़ापे में शादी करने-कराने से विवाह शादियों में व्यर्थ व्यय करने से, औषधालय तथा कन्या पाठशाला खुलवाने से टूटे-फूटे मन्दिरों का जीर्णोद्धार करने से, चोरी करने से, शिकार खेलने से, बद-चलनी करने से, सिगरेट बीड़ी पीने से, लड़के-लड़कियों को बेचने से या मार करने से।

पाठ १९

विद्यार्थी का कर्त्तव्य

प्यारे बालको! इस पाठ में हम तुम्हें यह बतलाना चाहते हैं कि एक विद्यार्थी का क्या कर्त्तव्य है, वैसे तो कर्त्तव्य बहुत से होते हैं। परन्तु हम नीचे कुछ मोटे-मोटे कर्त्तव्यों की ओर तुम्हारा ध्यान दिलाना चाहते हैं, जिनका पालन करके तुम अपना जीवन सुधार सकते हो।

है जीव भोग से शान्त हो,फिरे तो इनमें कौन सा सुख है । १०७

[स्वास्थ्य]

सदा नीरोग रहने का यत्न करो। अपने स्वास्थ्य की ओर अधिक ध्यान दो। यदि किसी का स्वास्थ्य बिगड़ जाता है, तो वह किसी काम का नहीं रहता है। स्वस्थ पुरुष का चित्त प्रसन्न रहता है, उसके शरीर में चुस्ती रहती है। स्वस्थ पुरुष का मन अपने आप काम करने को चाहता है। स्वास्थ्य का ब्रह्मचर्य, व्यायाम, खान-पान की शुद्धि से गहरा सम्बन्ध है।

[ब्रह्मचर्य]

ब्रह्मचर्य एक प्रकार का तप है। विद्यार्थियों के लिए ब्रह्मचारी रहकर विद्या पढ़ना आवश्यक है। विद्यार्थी हँसे हुए अपने मन को कभी किसी विषय भावना की ओर मत जाने दो। सत्य, सन्तोष, क्षमा, दया, प्रेम आदि गुण ब्रह्मचारी के लिए बड़े ही सुलभ हो जाते हैं। ब्रह्मचर्य के लिए धन की, न समय की और न खास ध्यान की आवश्यकता है। आवश्यकता है तो एक दृढ़ प्रतिज्ञा की। इसलिए अब सब विद्यार्थी ब्रह्मचर्य का नियम लो। उत्तम रीति से उसका पालन करो। फिर तुम कुछ दिनों में इसके मीठे फल को भी पाओगे। मन में दृढ़ता रखकर बुरे विचार न आने दो। वीर्य का दुरुपयोग न करो, बुरी संगत से

बचो। तुम्हारा आतम बल बढ़ेगा। तुम देशोन्नति करने में समर्थ होगे। विद्वानों में तुम्हारा आदर होगा। तुम्हारे पास धन की कमी नहीं रहेगी। अपने धर्म को भली भाँति पालन कर सकोगे।

[व्यायाम]

विद्यार्थियों को बड़ा मानसिक परिश्रम करना पड़ता है। वे यदि कोई व्यायाम न करें तो रात दिन बैठे-बैठे उनके हाथ पांव शिथिल जावेंगे। उनका शरीर अस्वस्थ हो जायेगा। व्यायाम करने से शरीर हृष्ट-पुष्ट और बलवान होता है। व्यायाम करने से शक्ति बढ़ती है, भूख अधिक लगती है। व्यायाम से शरीर में पसीना आता है और पसीने के साथ शरीर का मैल बाहर निकल जाता है। व्यायाम करने से मन तथा शरीर में एक प्रकार की फुर्ती और ताजगी आ जाती है, शरीर नीरोग रहता है। अपने शरीर के अनुसार जो व्यायाम योग्य जान पड़े उसी का अभ्यास करना है। नाचना, दौड़ना, कबड्डी खेलना, क्रिकेट, हाकी, फुटबाल आदि खेलों का खेलना लाभदायक है। सवेरे शाम खुले मैदान में सैर करना भी उपयोगी है। इसलिए नियत समय पर किसी न किसी प्रकार का व्यायाम करना विद्यार्थियों का कर्त्तव्य है।

[खान-पान तथा रहन-सहन]

अपने खान-पान की शुद्धि की ओर अधिक ध्यान दो, इससे शरीर स्वस्थ रहता है, सड़े-गले या अधपके पदार्थ कभी न खाओ। भूख से अधिक न खाओ। सदा नियत समय पर भोजन करो। शुद्ध छना हुआ जल पीओ। मदिरा, तम्बाकू, बीड़ी आदि मादक पदार्थों का सेवन मत करो।

[उदारता]

अपने मन को सदा शान्त और प्रसन्न रखो। बुरे भावों को अपने मन में न आने दो। छल कपट से सदा दूर रहो। सरल परिणामी बनो। यदि कोई मनुष्य तुम्हारे साथ कोई उपकार करे तो उसे भूल न जाओ। सदा उदार चित्त बनो। सबके साथ अच्छा व्यवहार करो। किसी से द्वेष मत करो। संकुचित दृष्टि को छोड़ो। सहनशीलता सीखो। यदि किसी दूसरे का तुम से अपराध हो जावे तो उससे अपने अपराध की क्षमा कराओ। अपनी पुस्तक, दवात, कलम आदि चीजों को सदा नियत स्थान पर रखो, ऐसा करने से जरूरत पड़ने पर तुम्हारी चीजें तुरन्त ही मिल जावेंगी, उनको ढूँढने में व्यर्थ ही समय न जाएगा।

[विनय]

सदा अपने माता-पिता की आज्ञा का पालन करो। ऐसा करना तुम्हारा परम कर्त्तव्य है। सदा यही प्रयत्न करो कि वे तुमसे प्रसन्न रहें। उन्होंने तुम्हारा पालन किया है तुम्हारे लिए बड़े कष्ट उठाये, जितना उनका आदर करो, थोड़ा है। माता-पिता के दूसरे स्थान पर विद्या गुरु है। वह ज्ञान देते हैं। भले बुरे को पहचानना सिखाते हैं। गुरु की आज्ञा मानना और उनका आदर करना तुम्हारा कर्त्तव्य है। पाठशाला जाकर अपने गुरु जी को प्रणाम करो। फिर आदर से अपने स्थान पर बैठो। जो कुछ पूछो, विनय से पूछो और जो कुछ वह कहें ध्यान से सुनो और उसे याद रखो। जो विद्यार्थी तुम्हारे से ऊँची कक्षा में हैं, उनका विनय करो। जो नीची कक्षा में हैं उनसे प्रेम करो। अपने सहपाठियों का भी यथायोग्य आदर करो। आपस में झगड़ा न करो, सबके साथ मेल रक्खो। खोटे लड़कों की संगति से बचो। तुम्हारे साथियों में जो निर्धन हों उनकी सहायता करो। अपने ऊपर भरोसा रक्खो। सब बड़ों को योग्यतानुसार सम्मान करो।

[मित्रता]

अपने मित्र से प्रेम रक्खो। मित्र जीवन भर का साथी होता है। किसी को मित्र बनाने से पहले उसको खूब परख कर लेनो चाहिए, नहीं तो फिर पीछे पछताना पड़ता है। यदि मित्र कपटी हो तो उससे सुख के बदले अनेक दुख मिलते हैं।

[समय]

बालको ! सदा समय की कदर करो। समय एक बहुमूल्य पदार्थ है। बहुत से लड़के अपने समय को आलस्य में खो देते हैं। बहुत से व्यर्थ की बातों में नष्ट कर डालते हैं, पर ठीक नहीं है। जो विद्यार्थी समय पर अपनी पढ़ाई-लिखाई वगैरह का काम नहीं करते हैं, उनको पीछे पछताना पड़ता है, परीक्षा के समय वे फेल हो जाते हैं इसलिए हर काम समय पर करो। एक समय विभाग बना लो। जिस काम के लिए जो समय रक्खो उसे उस समय में ही कर डालो। धर्म के समय में धर्म का पालन करो। पढ़ने के समय खूब

पढ़ो । खेलने के समय खूब उत्साह के साथ खेलो समय पर पाठशाला जाओ इत्यादि । आज का काम कल पर मत छोड़ो । ऐसा समय विभाग बनाओ कि पहले जरूरी २ कार्यों को करो । एक समय में एक ही काम करो । जिस काम को हाथ में लो उसे पूरा करके छोड़ो, अधूरा न रहने दो रात्रि को सोते समय विचार लो कोई काम रह तो नहीं गया ।

[परिश्रम]

जो काम तुम्हें करना हो परिश्रम के साथ करो । जो कुछ पढ़ो मन लगाकर पढ़ो । किसी बात को एक बार न समझ सको तो उसे दूसरी बार समझने का यत्न करो । पढ़ने में खूब परिश्रम करो । परिश्रम करने से मोटी बुद्धि वाले भी बड़े विद्वान हो जाया करते हैं । यदि तुम्हें कोई कार्य कठिन मालूम हो तो उसे अधूरा कर न छोड़ दो । साहस छोड़कर न बैठ जाओ । परिश्रम करके उस कार्य को पूरा करके छोड़ो । जो भी कार्य करो उसे उत्साह से करो ।

परिश्रमी और साहसी बालकों का हर समय मान होता है। जो अपने पैरों पर खड़ा रहकर शौर्यता के साथ साहस-पूर्वक कार्य करता है उसी की जय होती है और वही वीर कहलाता है।

आत्म-गौरव

सदा अपने जाति, कुल तथा धर्म मर्यादा का पालन करते रहो। इनकी प्रतिष्ठा रखना ही आत्म-गौरव है। आत्म-गौरव रखने के लिए विद्या, क्षमा, परोपकार, विनय आदि गुणों की आवश्यकता है। कभी भी कोई कार्य ऐसा न करो कि जिससे तुम्हारे धर्म पर दोष लगे। तुम्हारे देश, तुम्हारी जाति, तुम्हारे कुल तथा तुम्हारी पाठशाला की प्रतिष्ठा अग हो। जहाँ तक तुम से बन सके उनकी सेवा करो, जिससे उनकी प्रतिष्ठा संसार में सदा उज्ज्वल बनी रहे।

जिसको न निज गौरव तथा निज देश का अभिमान है।
वह नर नहीं नर-पशु निरा है, और मृतक समान है॥

भावनाएँ

सदा अपने दिल में यह भावना करो कि मेरी आत्मा में किसी समय भी खोटे भाव न हों। मेरे यह भाव रहें कि जगत के सब जीवों का भला हो, सब ही जीव मेरे समान हैं। गुणवानों को देखकर मेरे हृदय में ऐसी खुशी हो कि जैसे किसी रंक को चिन्तामणि रत्न

के मिलने से प्राप्त होती है। मेरी यह अभिलाषा है कि दीन-दुखी जीवों पर मेरे हृदय में दया उत्पन्न हो। उनको देखकर मेरा चित्त कांप उठे और मेरा यह दृढ़ विचार हो जावे कि जिस तरह भी बने उनके दुख दूर करने का प्रयत्न करूँ।

मेरी यह भावना है जो पाखण्डी तथा अधर्मी है, दुष्ट है, जो भलाई के बदले बुराई करते हैं, अथवा जो मेरा आदर तथा सत्कार नहीं करते हैं, मैं उनसे राग करूँ न द्वेष। प्यारे बालको! इस सब कथन का सारांश यह है कि सदा अपने मन और शरीर को पवित्र रक्खो। विषय-वासनाओं का त्याग करो। स्वार्थ बुद्धि को हटाओ। तुम में जो दोष हैं, उन्हें दूर करने का संकल्प करो, तथा गुणों को बढ़ाने में प्रयत्नशील बनो। ऐसा करने से अवश्य ही तुम्हारा जीवन सुन्दर, उदार, सुखी और शान्त बन जावेगा।

प्रश्नावली

१. विद्यार्थी किसे कहते हैं? विद्यार्थी के कौन से कर्तव्य हैं?
२. स्वास्थ्य किसे कहते हैं और इसको प्राप्त करने के लिए कौन-कौन सी बातों पर तुम ध्यान दोगे?
३. व्यायाम किसे कहते हैं? और व्यायाम करने से क्या लाभ हैं? [illegible] से व्यायाम हैं जो लड़कियों के लिए उचित समझे जा सकते हैं।
४. विनय किसे कहते हैं? तुम अपने माता-पिता गुरु और [illegible]

वया अपने से नीची कक्षाओं के छात्रों के प्रति इस गुण का किस प्रकार पालन करोगे ?

५. मित्रता करने से प्रथम क्या ख्याल रखना चाहिये ? समय का आदर क्यों करना चाहिये और अपना समय किस प्रकार व्यतीत करना चाहिए ?

६. संसार में ऐसी कौन सी शक्ति है जिससे मनुष्य प्रत्येक कार्य में सफलता प्राप्त कर सकता है ? 'आत्म गौरव' का क्या अभिप्राय है ? तुम्हें अपने दिल में कौन सी भावनायें लानी चाहिये।

पाठ २०

श्रावक की ग्यारह प्रतिमा

श्रावकों के आचरण के लिए ११ दर्जे होते हैं। उन्हें ग्यारह प्रतिमा कहते हैं। श्रावक ऊँचे २ चढ़ता हुआ पहली से दूसरी में, दूसरी से तीसरी में और इसी तरह ग्यारहवीं प्रतिमा तक चढ़ता है, और उससे बढ़कर साधु या मुनि हो जाता है। अगली २ प्रतिमाओं में पहले की प्रतिमाओं की क्रिया का पालन भी जरूरी है।

१ दर्शन प्रतिमा—निर्मल सम्यग्दर्शन सहित निरतिचार आठ मूलगुणों का पालन करना और सात व्यसनों का अतिचार सहित त्याग करना दर्शन प्रतिमा है।

इस प्रतिमा का धारी दार्शनिक श्रावक कहलाता है। वह जिनेन्द्रदेव, निर्ग्रन्थ गुरु और दयामय धर्म के सिवाय और किसी को मान्यता कभी नहीं करता। जिन धर्म में उनका दृढ़ विश्वास होता है। उसको किसी प्रकार की शंका तथा भय नहीं होता। वह धर्म का साधन करके विषय-सुखों की इच्छा नहीं करता। वह धर्मात्माओं तथा किसी भी दीन-दुखी मनुष्यों तथा पशुओं को रोगी और मलीन देखकर उनसे ग्लानि नहीं करता। मूढ़ता से देखा-देखी कोई अधर्मी क्रिया नहीं करता। यदि किसी समय कोई धर्म से डिगता हो तो वह उसे सहायता देकर धर्म में दृढ़ करता है और यथा शक्ति उनका उपकार करता है, तथा सच्चे ज्ञान का प्रकाश कर धर्म की प्रभावना करता है, धर्मात्माओं के साथ सच्चे जी से प्रीति करता है।

भूल कर भी अपनी जाति, कुल, धन, बल, रूप, अधिकार, विद्या और तप का गर्व नहीं करता। निरभिमानी और मन्द कषाय रखता है। वह कुगुरु, कुदेव की वन्दना नहीं करता तथा पीपल पूजना, कलम-दवात तथा रुपये पैसे की पूजना आदि लोक-मूढ़ता नहीं करता। कुगुरु, कुदेव, कुशास्त्र व इनके सेवक-जनों की प्रशंसा व स्तुति इस प्रकार नहीं करता, जिससे उसके सम्यग्दर्शन में दोष लगे। इस प्रकार सब

प्राणियों से प्रेम रखते हुए वह अपने श्रद्धान की रक्षा करता है।

२. व्रत प्रतिमा—अणुव्रत-अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, परिग्रह परिमाण।

३ गुणव्रत– दिग्व्रत, देशव्रत, अनर्थदण्डव्रत।

४ शिक्षाव्रत—सामायिक, प्रोषधोपवास, भोगोपभोग परिमाण, अतिथि संविभाग। इन बारह व्रतों का निरतिचार पालन करना व्रत प्रतिमा है। इस प्रतिमा का धारी व्रती श्रावक कहलाता है। वह अपने व्रतों में कोई अतिचार नहीं लगाता।

३. सामायिक प्रतिमा—प्रतिदिन सवेरे, दोपहर, शाम को छः घड़ी या कम से कम दो घड़ी तक निरतिचार सामायिक करना सामायिक प्रतिमा है।

४. प्रोषधप्रतिमा—प्रत्येक अष्टमी और चतुर्दशी को १६ पहर का अतिचार रहित उपवास करना, और आरम्भ परिग्रह को त्याग करके एकान्त में बैठकर धर्म ध्यान करना प्रोषध प्रतिमा है। १६ पहर का प्रोषध उत्तम होता है। १२ पहर का मध्यम और ८ पहर का जघन्य प्रोषध कहलाता है।

५. सचित्तत्याग प्रतिमा—हरी वनस्पति अर्थात् कच्चे फल, फूल, बीज, पत्ते वगैरह को न खाना सचित्त त्याग प्रतिमा है। जिसमें जीव होते हैं, उसे सचित्त

कहते हैं। इसलिए ऐसे पदार्थों का जिनमें जीव न हो खाना सचित्त त्याग प्रतिमा है। इस प्रतिमा का धारी कच्चे जल का भी त्याग करता है, परन्तु वह स्वयं सचित्त पदार्थों को अचित्त बनाकर ग्रहण करता है।

६. रात्रि भोजन त्याग प्रतिमा—मन, वचन, काय से और कृत, कारित, अनुमोदना से रात्रि में हर प्रकार के आहार का सर्वथा त्याग करना रात्रि भोजन त्याग प्रतिमा है। इन पतिमा का धारी सूरज छिपने के दो घड़ी पहले से सूरज निकलने के दो घड़ी पीछे तक आहार पानी का सर्वथा त्याग करता है।

७. ब्रह्मचर्य प्रतिमा—मन, वचन, काय से स्त्री-मात्र का त्याग करना तथा निरतिचार ब्रह्मचर्य पालन करना ब्रह्मचर्य प्रतिमा है।

. आरम्भत्याग प्रतिमा—मन, वचन, काय से और कृत, कारित, अनुमोदना से गृह कार्य सम्बन्धी सब प्रकार की क्रियाओं का त्याग करना आरम्भ त्याग प्रतिमा है। इस प्रतिमा का धारी पूजनार्थ स्नान, पूजा व दान कर सकता है।

९. परिग्रह त्याग प्रतिमा—धन, धान्यादि दस प्रकार के बाह्य परिग्रह को त्याग कर सन्तोष धारण करना परिग्रह त्याग प्रतिमा है। इस प्रतिमा का धारी अपने लिए कुछ आवश्यक वस्तु रख लेता है। अथवा

चंचल चित्त सब विघ्न दुखों का मूल है।

८. नवीं प्रतिमा के धारी का क्या कर्तव्य है ? इस प्रतिमा के धारी घर में रह सकते हैं या नहीं और क्यों ?
९. दसवीं प्रतिमा का धारी धार्मिक कार्यों में अपनी अनुमति देगा या नहीं ?
१०. (क) उद्दिष्ट त्याग प्रतिमा किसे कहते हैं ? इस प्रतिमा के लिए भोजन का क्या नियम है ?
(ख) इस प्रतिमा के कितने भेद हैं ? और उनमें क्या अन्तर है ?

पाठ २१ नीति के दोहे

(पं० द्यानतराय जी)

नर की शोभा रूप है, रूप शोभा गुणवान ।
गुण की शोभा ज्ञानतें, ज्ञान छिमातें जान ॥१॥
चेतन तुम तो चतुर हो, कहा भये मति हीन ।
ऐसा नर-भव पाय के, विषयन में चित दीन ॥२॥
निशि का दीपक चन्द्रमा, दिन का दीपक भान ।
कुल का दीपक पुत्र है, ति जग दीपक ज्ञान ॥३॥
घर की शोभा धन महा, धन की शोभा दान ।
शोभै दान विवेक सों, छिमा विवेक प्रधान ॥४॥
कला बहत्तर पुरुष की, तामें दो सरदार ।
एक जीव की जीविका, दूजे जीव उद्धार ॥५॥
क्रोध समान न शत्रु है, क्षमा समान न मित्र ।
निन्दा समान न मिलान है, प्रभु के समान पवित्र ॥६॥

[illegible] भोजन करत सिर, और कलहिनी नार।
धोये मैले कापड़े, नरक निशानी चार ॥७॥
उद्यम बिन अरु मांगना, वेटी चलना चार।
सब दुख जिनके मिट गये, तेई सुखी निहार ॥८॥
दाना दुश्मन हू भला, जो पीतम सम्बन्ध।
बड़े भाग्य तें पाइये, सोना और सुगन्ध ॥९॥
धन जोरे तें ऊँच नहिं, ऊँच दान तें होत।
सागर नीचे हो रहै, ऊपर मेघ उदोत ॥१०॥

प्रश्नावली

१. 'नीति के दोहों' से क्या अभिप्राय है ? और इन दोहों के बनाने वाले कौन थे ?
२. [illegible] वाली कौन सी वस्तु है ? मनुष्य के लिए [illegible] होती है और उनमें मुख्य कौन सी होती है ?
३. इस संसार में सबसे अधिक शत्रु और और मित्र कौन है ?
४. मनुष्य के [illegible] किस प्रकार ऊँचा बन सकता है ?
५. नीति के दोहों में से अपनी पसन्द के कोई [illegible] सुनाओ।

पाठ २२ वीर विमलशाह

वीर विमलशाह पाटन के वीर मन्त्री के पुत्र थे।

भोग से मनुष्य भोगी हो जाता है।

प्रश्नावली

१. वीर विमलशाह कौन थे ?

२. उनकी वीरता और पराक्रम के [illegible]

पाठ २३ वीरांगना

सीता, सावित्री, दमयन्ती,
मैना सुन्दरी, द्रोपदि, कुन्ती।
यह सब धर्म-ज्ञान महिलायें,
जन्मी भारत में गुणवन्ती।
दुर्गा जीजा लक्ष्मीबाई,
रण में शस्त्र चला दर्शाई।
अपने बल कौशल के द्वारा,
दुश्मन की छाती दहलाई।

तुम हो वीराङ्गिनी सन्तानें,
आगे बढ़ना सीना ताने।
तुम में जो यह शौर्य भरा हो,
विश्व तुम्हारा लोहा मानें।
उन्नत पथ पर बढ़ते जाना,
संकट से न कभी घबराना।
सहनशीलता तथा धैर्य का,
जग में जय झण्डा फहराना।